Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन ज्ञान
साप्ताहिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—सत्येन्द्र

प्रथम पृष्ठ चित्र परिचय

अपरिग्रह की प्रतिमूर्ति
स्वामी स्वतंत्रानन्द

पौष पूर्णिमा संवत् १९३४ ! लुधियाना (पंजाब) के समीप स्थित मोही ग्राम के एक सिख सूबेदार श्री भगवानसिंह के यहां १ बालक ने जन्म लिया । माता पिता ने उसका नाम रखा था केहरसिंह । जालंधर छावनी में मिडिल तक ही शिक्षा प्राप्त की थी कि उस समय प्रचलित प्रथा के अनुसार इस बालक को विवाह सूत्र में आबद्ध कर दिया । किन्तु कुछ ही समय बाद उनकी जीवन संगिनी उनसे चिर विदाई ले गयी । श्री केहर सिंह के जीवन में एक नवीन मोड़ आ गया और ग्राम के उदासी साधुओं का डेरा ही उसके आकर्षण का केन्द्र बन गया । यहां एक विद्वान् साधु थे पंडित बिशनदास । वैचारिक दृष्टि से आर्य समाजी । केहरसिंह उनके निकट संपर्क में आए तो मन में वैराग्य भाव प्रबल हो उठा । अतएव एक दिन चुपचाप बिना किसी को कुछ बताए केहरसिंह ने घर को त्यागकर पर्यटन का पथ अपना लिया । कलकत्ता, रंगून मलय देश (मलाया) आदि का भ्रमण करने के उपरांत केहरसिंह पुनः पंचनद के जिला फीरोजपुर में स्थित परवरण्ड नामक ग्राम में पहुंचे । संन्यास ग्रहण की प्रबल इच्छा से प्रेरित केहरसिंह ने इसी ग्राम के एक साधु स्वामी पूर्णानन्द जी से संन्यास दीक्षा ग्रहण की और प्राणपुरी बन गए । तदुपरांत जब अपने जीवन को नवीन दिशा प्रदान करने वाले पं० बिशनदास से मिले तो उन्होंने आपको संस्कृत के अध्ययन हेतु भी प्रेरित किया । पहले तो आपने अमृतसर के एक उदासी साधु पं० रामस्वरूप से संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त किया । तदुपरांत कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के अवसर पर लगे विशाल मेले में साधुओं से मिलकर आपने भी तीर्थाटन का विचार बनाया और अपनी आकांक्षा को क्रियान्वित करने हेतु साधुओं के साथ ही चल पड़े । उस समय वह केवल कोपीन धारण करते और ऊपर से एक चादर ओढ़-लेते तथा एक हाथ में सदैव बालटी पकड़े रहते । इसी लिए केहर सिंह जी अब पूर्ण पुरी बालटी वाले साधु के नाम से ही जाने लगे ।

सिद्ध बाबा से स्वतन्त्रानन्द

तीर्थाटन के उस क्रम में भी संस्कृत अध्ययन की आपकी लालसा पूर्ववत विद्यमान थी । अतएव एक दिन आपने साधु मंडली से पृथक होकर काशी की राह ली और वहां जाकर लगभग ६ वर्ष तक पूर्ण मनोयोग सहित संस्कृत का अध्ययन काशी में ही करते रहे ।

अध्ययन का यह क्रम पूर्ण कर उन्होंने पुनः प्रवास आरम्भ कर दिया और बम्बई के निकट बनखंड को अपना आवास बना लिया । आसपास के क्षेत्रों में प्राणपुरी सिद्ध बाबा के नाम से तो विख्यात हुए ही किन्तु जन जन में दूर एकान्त स्वतन्त्र रूप से रहने के अभ्यस्त होने के कारण आपकी ख्याति स्वतन्त्रानन्द के रूप में भी हो गई । वहां मालवा-सीमा प्रांत एवम् सिंध तथा गुजरात, मध्य प्रदेश एवम् राजस्थान के विभिन्न आंचलों का भ्रमण करते हुए आप वर्षों के बाद पुनः पंजाब पधारे तो आपकी भेंट पुनः पं० बिशनदास से हुई । आपने स्वामी स्वतन्त्रानन्द को आर्य समाज में सम्मिलित होकर जनसेवा करने हेतु प्रवृत्त किया । आर्य सामाजिक प्रथम एवम् प्रारम्भ का सूत्र संभालने से पूर्व आपने ६ मास तक रामा मंडी (भटिण्डा) में रहकर आर्य समाज के साहित्य का स्वाध्याय किया । तदुपरान्त आपने लुधियाना को अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाकर 'वेद प्रचारिणी सभा' पाठशाला का कार्य-भार ग्रहण किया । यहां ही आर्य जाति के प्रमुख नेता एवं देश के सुप्रसिद्ध पत्रकार महाशय कृष्ण से आपकी भेंट हुई तो उन्होंने आपको लाहौर ले जाकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वावधान में प्रचार का कार्य भार सौंप दिया ।

विदेश यात्राएं

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी १९०१ में कलकत्ता से दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशों में गए और मलाया, सिंगापुर, जावा सुमात्रा, बोर्नियो तथा फिलिपाइन्स आदि की यात्रा कर १९०४ में भारत लौटे । तदुपरांत १९१३ में आप मारीशस भी महाशय कृष्ण के अनुरोध पर गए और वहां ३ वर्ष तक वैदिक धर्म का प्रचार तथा करने के उपरांत १९१७ में भारत लौटे । १९२० में आप बर्मा में भी वैदिक धर्म प्रचारार्थ पहुंचे तो वहां से पूर्वी अफ्रीका भी गए और हजारा तक आपने वैदिक-धर्म का सिंहनाद किया । १९२५ में आप वेद-प्रचार विभाग के अधिष्ठाता बने तो दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर का आचार्य पद भी आपने ही सम्भाला । आर्य जाति में इस निस्पृह संन्यासी को अपनी योग्यता के सर्वथा अनुरूप १९३९ से १९४१ तक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यकर्ता प्रधान व उपप्रधान का पद भी मिला ।

हैदराबाद सत्याग्रह

उन्हीं दिनों हैदराबाद में आर्य समाज ने नागरिक अधिकारों की रक्षार्थ सत्याग्रह का अभियान आरम्भ किया तो आप ही को शोलापुर स्थित केन्द्रीय शिविर का कार्यभार सौंपा गया । जिसे आपने इतनी दक्षता के साथ निभाया कि आपको आर्य जाति में 'फील्डमार्शल' स्वामी स्वतंत्रानन्द के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा । इस सत्याग्रह आन्दोलन की सफलता से आपका योगदान आर्य जाति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा । १९३८ में स्वामी जी ने ही दयानन्द मठ दीनानगर की स्थापना की थी । हैदराबाद सत्याग्रह के बाद हरियाणा की मुस्लिम रियासत लोहारू में आपने सत्याग्रह कर वहां के शासक को आर्य समाज के प्रचार पर लगाई गई रुकावटों को हटवाने पर बाध्य किया ।

(शेष पृष्ठ ३० पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम्
जनज्ञान
वेद
हिन्दी साप्ताहिक   नई दिल्ली

वर्ष १ ● रविवार ९ मई १९७६ : २७ वैशाख २०३३ ● अंक १३

ओ३म्

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली का पत्र

सम्पादक
पंडिता राकेश रानी
●
सह-सम्पादक
कु० आभा
दूरभाष : ५६६६३९
: २०१५८४
●
पता : वेद मंदिर
१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग
[निकट ३१, नाईवाला]
करोल बाग, नई दिल्ली-११०००५
●
मूल्य एक प्रति ५० पैसे
वार्षिक मूल्य २०)
विदेश में ६ पौंड (हवाई डाक से)
४ पौंड: (समुद्री डाक से)
आजीवन ३०१ रु०
●
दयानन्दाब्द । १५१
सृष्टि संवत् । १९६०८५३०७७

प्यासा हूँ....

आज मेरे सपनों में कोई नहीं आएगा !
मेरे मन के भावों को समझ नहीं पाएगा !!

रात के अंधेरे में, निद्रा की गोद में,
चिन्ता एक रहती है, प्रश्न एक उठता है,
धरती की छाया का, अन्त कहां होगा, प्रिय,
पीड़ा का, बन्धन का, मानव के क्रन्दन का,
जीवन की भाषा को, समझ कौन पाएगा ?

अपनी इस यात्रा में एकाकी चलना है,
प्राणों के सरगम पर, आगे हो बढ़ना है,
निश्चित है मंजिल भी, पांवों का संबल भी,
हार नहीं देखी कभी, गीतों की भाषा में,
चलने की वेला में, गीत कौन गाएगा ?

मेरे जो सपने थे, अब भी जो शेष हैं,
धर्म की रक्षा में, लिखे जो विशेष हैं,
उन की ही रेखा में, रंग कौन भरता है,
मेरी ही अरथी पर, पुष्प कौन धरता है,
महलों में कुटिया के ढंग कौन लाएगा ?

जलना है, चलना है, बढ़ना है, जीना है,
युग की इन लहरों को, नया रूप देना है,
काया में माया के, अमृत बरसाना है,
सूखी फुलवारी में, जीवन सजाना है,
कौन मेरे गीतों को मेरे बाद गाएगा ?

अमृत की बूंदों का संग्रह कर चलता हूँ,
हाथों में झंडा है, पावन, प्रिय 'ओ३म्' का।
आहुति दो, जीवन दो, प्राणों की समिधा दो,
आवाहन मेरा अब कौन सुन पाएगा !
जीवन की प्यास रहेगी अधूरी ही
उसे कोई क्या पूरी कर पाएगा ?

प्यासा हूँ......जीवन का,

—भारतेन्द्रनाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अपनी बात

धर्म और ईश्वर

धर्म का आधार है ईश्वर ! ईश्वर से लाभ है मिलने पर ! दोनों में जो भावात्मक अविच्छिन्न सम्बंध है, उसे अलग नहीं किया जा सकता ।

धर्म की स्थापना तभी हृदय में हो सकती है यदि वहां परमात्मा का प्रकाश हो । इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि जहां परमात्मा है वहां धर्म है ।

धर्म बाहर के चिह्नों में नहीं अपितु मन की गहरी पर्तों में रहता है । व्यक्ति ईश्वर से दूर रहकर धर्म का ढोंग कर सकता है, उस पर आचरण नहीं कर सकता ।

अब आप ही सोचिए..... क्या आपने ईश्वर को देखा है ? उसे इन आँखों से नहीं देखा जा सकता । मन मन्दिर को स्वच्छ कर, काम, क्रोध, राग-द्वेष, छल-कपट मोह से दूर रहकर आत्मा जब अपने को देखता है तब, केवल तब ही प्रभु का साक्षात्कार होता है । यह साक्षात्कार ही धर्म को धारण करने की सामर्थ्य मानस में उत्पन्न करता है ।

संसार को स्वर्ग बनाने का साधन है धर्म, धर्म के लिए आवश्यक है प्रभु दर्शन । इसलिये प्रभु-दर्शन आवश्यक है शांति और आनन्द के लिए ।

वैदिक धर्म जिस क्रांति का आयोजन करता है वह क्रांति धर्म की स्थापना की और अधर्म की समाप्ति की है । शरीर को ही जीवन लक्ष्य मानने वाले कभी प्रभु का साक्षात्कार नहीं कर सकते । अतः उनके मानस में सत्य का स्रोत प्रवाहित करना हमारा परम लक्ष्य है ।

जीवन एक धारा है जो बहती रहेगी । अविराम, कहीं रुकेगी नहीं, किन्तु जब मंजिल आएगी, तब धर्म स्मरण आएगा, प्रभु की बात मन को मथेगी, परिणाम तब क्या निकलेगा ?

प्रकृति की उपासना में व्यस्त व्यक्ति आत्म-हनन कर रहे हैं । यह आत्म-घात कैसे रुके, कैसे रुके सर्वनाश का प्रवाह और उभरे सत्य, यह समस्या है ।

आज भी हम इसी सत्य की स्थापना-प्रतिष्ठा के लिये संघर्ष कर रहे हैं, करते रहेंगे । छलना का छल आप को बहका सकता है तो सत्य धर्म भी कभी आप को प्रकाश देगा । कब आयेगी वह शुभ घड़ी । प्रतीक्षा है ।

साप्ताहिक पढ़ रहे हैं आप ?

जन-ज्ञान (साप्ताहिक) के १२ अंक आप पढ़ चुके । १३वां अंक आपके हाथ में है । इसमें कितनी सामग्री आपको मिलती है, यह भी आपके सामने है ।

आप के सुझावों का हमने सदा स्वागत किया है । इस में और क्या परिवर्तन होने चाहिए, यह भी आप हमें बताते रहें ।

हमारी आप से यही प्रार्थना है कि जैसे भी हो, **कम से कम एक नया सदस्य बनाकर उस का शुल्क** भिजवा दें ।

एक प्रति पर लागत लगभग ६० पैसे आ रही है । और हम इसे डाक व्यय सहित लगभग ३६-३७ पैसे में दे रहे हैं । इतने घाटे में यह गाड़ी तभी चल सकती है जब सारे सदस्य इसे अपना समझ कर इसकी उन्नति में लग जाएं ।

अर्थाभाव और संकटों में आपके भरोसे जो हम कर रहे हैं, उसे समझिए और आगे बढ़ने में अपना पवित्र योग-दान दीजिए ।

अवकाश के दिनों में

बहुत से आर्ययुवकों व अध्यापकों का अवकाश काल आरम्भ होने को है । इस काल में प्रत्येक व्यक्ति कम से कम ८ दिन ग्रामों में प्रचार के लिए दे ।

अपने आस-पास के दो गांव चुन लीजिए । ४-४ दिन वहां जाकर रहिए और ग्रामवासियों में सत्यार्थ प्रकाश, ऋषि जीवनी का प्रचार कीजिए ।

प्रेम का मंत्र लेकर गांवों में जाइए । अनुशासन, एकता और मिलकर रहने के लाभ उन्हें बताइए । अंध-विश्वास, गुरुडम आदि की हानियों से परिचित कराइये ।

भारत के १० लाख ग्राम वर्षों से हमें बुला रहे हैं । क्या निमंत्रण स्वीकार होगा ?

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी

१९७६ में आपने धूम-धाम से मनानी है । अभी से अपने कार्यक्रम बना डालिए और निश्चय कीजिए कि एक वर्ष में आप कितने सत्यार्थ-प्रकाश वितरित करेंगे ।

आपका उत्साह और उमंग भाव अब जागना चाहिए और संसार के महान् क्रांतिकारी ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश को प्रत्येक नागरिक तक पहुंचाने का व्रत लेकर कार्य में लग जाना चाहिए ।

क्रांति का जो प्रथम चरण १८७५ में आरंभ हुआ था, उसकी आहुति हम दे चुके, अब नई शताब्दी के प्रथम चरण में नए बल से हम काम कर सकें । इसका आयोजन हम करें ।

सत्य फैले इसके लिए सत्यार्थप्रकाश फैलाना ही होगा ।

—राकेशरानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

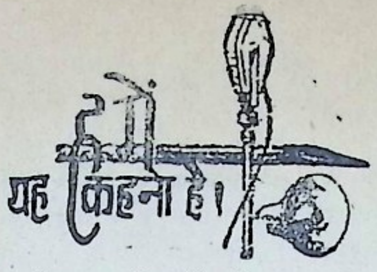

हम दिव्य दृष्टि से देख रहे हैं—

नींद आ रही थी, झपकी लग गयी और हम पहुंच गए, दूर पार कहीं दिव्य प्रकाश में और हमने देखा—

हमारे देश का नाम बदल गया है। उसमें नए-नए परिधान पहने, नई-नई मुद्राओं में नर-नारी घूम रहे हैं, जिन के वस्त्र 'मिनी' हैं उनमें न लज्जा है न संकोच··· पशुओं का सा आचरण हो रहा है।

हम भी कुछ देर उनकी छानबीन के लिए यहां आ गए। एक से पूछा, 'राम' कौन था ?

उत्तर मिला होगा कोई, हमें नहीं पता ?

प्रश्न किया, कृष्ण का नाम सुना है ?

उत्तर मिला—कहां रहता है ?

गीता–वेद–उपनिषद्—दर्शन–रामायण के बारे में सैंकड़ों से पूछा। पुस्तकालयों के खूब चक्कर लगाए, पर कहीं इन का पता नहीं था।

गंगा-यमुना का नाम भी बदला हुआ था।

इतिहास की पुस्तकें देखीं तो शिवा-प्रताप देशद्रोहियों की पंक्तियों में प्रथम थे।

गांधी–नेहरू–दयानन्द और विवेकानन्द को पागल और सिर फिरा बताया गया था

हम घूमते रहे—देखते रहे !

पर कहीं भी कुछ ऐसा न था, जिसे देख कर विश्वास होता कि यह विश्व मुकुट भारत है।

हम कहीं नहीं थे, अरबों वर्ष पुरानी परम्पराएं नहीं थीं। संसार को प्रकाश देने वाला आध्यात्मिक ज्ञान नहीं था। लगता था कि जादू के जोर से सभी कुछ बदल दिया गया है।

सब कुछ देख कर हम कांप गए। समय की धारा को पहचान कर मौन रहे, क्योंकि भारत भारत नहीं रहा था। जैसे पवित्र सिन्ध भूमि आज पाकिस्तान के रूप में बदली हुई है उसी तरह देवताओं की स्वर्ण भूमि भी बदली हुई थी।

रक्तपात, अश्लीलता और गन्दगी के ढेर में पशुओं की तरह मनुष्यों को देख कर हम खड़े न रह सके, गिर पड़े और आंखें खुल गयीं।

वास्तविक जगत् में लौटने पर हमने सारी स्थिति पर विचार किया और लगा कि जो सपना देखा है वह सच होने वाला है।

हृदय रो पड़ा, रात भर सिर धुनते रहे, पर कोई उपाय नजर नहीं आया। लगा जो हो रहा है, हवा जो चल रही है, उसका निश्चित परिणाम यही तो अनिवार्य रूप से होगा। इस पवित्र भूमि पर सब कुछ होगा, पर भारत 'भारत' न रहेगा।

जमीन का नाम देश नहीं है। सभ्यता, संस्कृति, विचार ही देश को बनाते हैं। पर आज इस देश के नागरिक जिस ढंग से चल रहे हैं, उस का परिणाम दूर दृष्टि से हमने आप के सामने रख दिया है।

स्वार्थियों और धन के लोभियों, समय के साथ बहने वालों का अन्त यही तो होता है। देशद्रोही—देशभक्त होंगे, और देशभक्त देशद्रोही—काश, कि हम बदल सकते और सपना झूठा हो सकता !

जीवन अर्पित करो

इन पंक्तियों को पढ़ने वाले योग्य व्यक्तियों से हमारी प्रार्थना है कि वे यदि ऋषियों के दिव्य स्वप्नों को पूर्ण करना चाहते हैं तो दयानन्द संस्थान को जीवन अर्पित करें।

हम ऐसे योग्य व्यक्ति की खोज में हैं जो हमारे सामने ही सारा कार्य संभाल ले। व्यक्ति की योग्यता उसकी महर्षि के प्रति श्रद्धा है। उपाधि नहीं, योग्यता हो बोलने की, काम करने की, त्याग भावना की !

इतना निश्चित है कि जो व्यक्ति जीवन देंगे, उनका और उनके सारे परिवार का भार संस्थान पर होगा।

'स्व' को मिटा कर ऋषि का कार्य करने के इच्छुक आगे आएं। हमारा स्वास्थ्य अब और अधिक चलने नहीं देगा। सब कुछ जो हमने खड़ा किया है, वह हमारे ही साथ समाप्त न हो, यह हमारी इच्छा है।

क्या भारत भूमि में ऐसे व्यक्ति नहीं मिलेंगे जो अपना जीवन धर्मप्रचार हेतु अर्पित कर सकें ! यही सोच रहा हूं।

१ लाख परिवारों में 'वेद'

पहुंचे, अब जीवन की केवल यही इच्छा शेष [illegible] है। स्वास्थ्य बुरी तरह लड़खड़ा गया है, पर हम मन में एक आस संजोए जी रहे हैं कि अपने इस जीवन में कम से कम एक लाख घरों में किसी तरह प्रभु की वाणी पहुंचा जाएं।

१५१) में संस्करण दे रहे हैं। १०१) का साहित्य साथ में उपहार। इतना सस्ता साहित्य संसार में कोई नहीं दे सकता हम भी यह सब आपके ही भरोसे कर पा रहे हैं।

आप इस लक्ष्य पूर्ति में श्रद्धा से लगें। घर-घर में वेद पहुंचाएं और ऋषि का दिव्य स्वप्न पूर्ण करें।

—भारतेन्द्र नाथ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

समाचार-चौ[illegible] (२५ अप्रैल से ३ मई तक)

२५ अप्रैल—समाज को अंध-विश्वासों से मुक्ति दिलाना आवश्यक : श्रीमती इन्दिरा गांधी । भारत मारीशस को लघु उद्योगों की स्थापना में सहायता देगा । गत वर्ष देश में ८४ लाख टन खनिज तेल का उत्पादन । मुस्लिम कानून में परिवर्तन मुसलमानों की सहायता से : राष्ट्रपति । चौथी-पांचवीं शताब्दी के अवशेष नागपुर के समीप मिले ।

26 अप्रैल—पश्चिमी आलोचक भारत को उपदेश न दें : लेडी जेनी ली । छात्रों में नशीली वस्तुओं के सेवन की प्रवृत्ति का अध्ययन । पंजाब व उत्तर प्रदेश में 5 बड़ी खत्तियों का निर्माण : भंडार क्षमता बढ़ाने की योजना । कपड़े के हर मीटर पर बिक्री मूल्य १ जून से ।

२७ अप्रैल—विदेशी संवाददाता कानून की सीमा में रहें या भारत छोड़ें : विद्याचरण शुक्ल की चेतावनी । मिलावट व हेराफेरी करने वालों के विरुद्ध 'मीसा' का उपयोग : उ० प्र० सरकार का निर्णय । चीन द्वारा मिस्र को सैनिक सामग्री । रूस के रक्षामंत्री ग्रेचकों का निधन । भारतीय कोयले का यूरोप को निर्यात । फरक्का बांध : बंगला देश तकनीकी स्तर पर वार्ता को सहमत ।

28 अप्रैल—विधान परिषद चुनाव : उत्तर प्रदेश व बिहार में कांग्रेस की भारी विजय । भारत-पाक वार्ता की नयी चरण इस्लामाबाद में । उ० प्र० में 5 लाख मुकदमों का फैसला बाकी । अयूब का पुत्र गिरफ्तार । अमृतसर मैडीकल कालेज की मान्यता रद्द नहीं । रोडेशिया में स्मिथ शासन के विरुद्ध 'युद्ध शुरू' : न्येरेरे की घोषणा ।

29 अप्रैल—आपात् स्थिति में बंदियों के प्रत्यक्षीकरण पर विचार नहीं : सुप्रीम कोर्ट का फैसला । स्वर्णसिंह समिति के संविधान संशोधन सुझावों पर मुख्यमन्त्रियों व प्रदेश कांग्रेस अध्यक्षों में सहमति । केन्द्र द्वारा निर्धन छात्रों को 500 छात्र-वृत्तियां । विकासशील देशों में 30 करोड़ बेरोजगार । उ० प्र० में राज-मार्गों पर डाकुओं को देखते ही गोली मारने का आदेश । 1973 में देश में 17072 हत्याएं । रेलगाड़ियों में सीटों का 6 मास पहले भी आरक्षण । स्वदेशी राकेटों से भारतीय उपग्रहों का प्रक्षेपण शीघ्र ।

30 अप्रैल—खानों से अनधिकृत तौर पर कोयला निकालने पर प्रतिबन्ध सम्बन्धी अध्यादेश की प्रति लोकसभा में पेश । सूर्यग्रहण पर दस लाख व्यक्तियों द्वारा कुरुक्षेत्र में स्नान । देश के प्रमुख खिलाड़ियों को अर्जुन पुरस्कार । श्री जयप्रकाश को अस्पताल से छुट्टी । रासायनिक खादों के मूल्य में चौथी बार कटौती । रेलवे निर्माण के लिए नई कम्पनी । अगले 2 वर्षों में शिक्षा प्रणाली में योग-शिक्षा का विस्तार । अंध-विश्वास व कुरीतियों के उन्मूलन से ही प्रगति : उप-राष्ट्रपति के उद्गार ।

1 मई—परिवार नियोजन के लिए दबाव डालने का प्रश्न नहीं : श्रीमती इन्दिरा गांधी । इस वर्ष 12 प्रतिशत अधिक बिजली का उत्पादन होगा । अगले वर्ष 225 करोड़ रु० के सिलेसिलाये कपड़ों का निर्यात । भारत-अमरीकी आयोग की बैठक 4 मई को न्यूयार्क में । श्री जी० पी० वारियर रेलवे बोर्ड के नए अध्यक्ष । देश में चावल की लक्ष्य से अधिक वसूली । मध्य प्रदेश में चुंगी कर समाप्त । राज्यों मे भूतपूर्व सैनिकों के पुनर्वास में रुचि लेने की अपील ।

आर्य हवन सामग्री

शास्त्रोक्त विधि से निर्मित,

वैदिक विद्वानों द्वारा प्रशंसित, सुगन्धित, रोगनाशक एवं पौष्टिक हवन सामग्री से ही नित्य यज्ञ करें ।

१. स्पेशल मेवा युक्त हवन सामग्री का भाव ६) किलो ।
२. सुगन्ध की लपटों से परिपूर्ण हवन सामग्री का भाव ४) किलो है ।
३. आर्य हवन सामग्री का भाव ३) किलो है ।

आर्डर इस पते पर भेजें :

वेदपथिक धर्मवीर आर्य झंडाधारी
अध्यक्ष आर्य हवन सामग्री निर्माणशाला
अहाता ठाकुरदास, सरायरुहेला, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—डा० भवानीलाल भारतीय

आर्यसमाज : भविष्य की दिशा और कार्यक्रम

★ ★ ★

शताब्दी वर्ष में हमने आर्यसमाज के संस्थापन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तथा देश एवं मानवता के पुनरुत्थान में उसके सार्वत्रिक योगदान पर विचार किया। अब हमें आर्यसमाज के कलेवर में नवीन प्राणों का उन्मेष कराने तथा परिवर्तित परिस्थितियों में उसे अधिकाधिक सशक्त एवं अपने लक्ष्य की पूर्ति में तत्परता सहित क्रियाशील होने के कतिपय उपायों पर विचार करना होगा।

आर्यसमाज की प्रजातांत्रिक चुनाव प्रणाली और उसमें परिवर्तन की आवश्यकता—

सम्भवतः देश के सांस्कृतिक पुनर्जागरण के युग में आर्यसमाज ही एक मात्र ऐसी संस्था थी जिसने अपने संगठन के लिए प्रजातांत्रिक विधान को स्वीकार किया। यह विधान उस समय क्रियान्वित किया गया था जब लोकतंत्र और प्रजातन्त्र की कोई चर्चा ही नहीं थी। आर्यसमाज के लिये यह वस्तुतः एक गौरव की बात है कि उसने अपने सदस्यों को लोकतांत्रिक अधिकार उस समय प्रदान किये जब कि व्यक्ति के लोकसत्तात्मक अधिकारों की दुहाई देने वाली राजनैतिक संस्थाओं का जात कर्म भी नहीं हुआ था।

जनतन्त्र पर आधारित यह चुनाव प्रणाली एक युग तक अत्यन्त सफलतापूर्वक आर्यसमाज के लिये उपयोगी सिद्ध होती रही। विदेशी शासन के युग में तो आर्यसमाज के सुदृढ़ प्रजासत्तात्मक संगठन को देखकर एक आलोचक ने उसे 'Government within the Government' कहा था। परन्तु आज यह अनुभव किया जा रहा है कि जिस चुनाव प्रणाली को अपना कर आर्यसमाज ने देश के सार्वजनिक जीवन को मार्ग दर्शन दिया था आज वही पद्धति उसके लिये अभिशाप बन गई है। धार्मिक संस्था में गुरु पद की स्थापना विभिन्न विकृतियों को जन्म देती है, यह स्वामी दयानन्द का निश्चित विश्वास था। धीरे-धीरे गुरु परम्परा व्यक्ति पूजा को जन्म देती है और सिद्धान्तों के स्थान पर अनधिकारी व्यक्ति ही पूजा और सम्मान के पात्र बन जाते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि ऋषि दयानन्द मूर्ख और अयोग्य व्यक्तियों को प्रजातन्त्र का अधिकार देने के समर्थक थे। मन्वादि स्मृति ग्रंथों के आधार पर उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में यह स्पष्ट कर दिया है कि वेदवित् एक भी संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही धर्म श्रेष्ठ और माननीय है। इसके विपरीत सहस्रों अज्ञानी मिलकर भी जो कुछ व्यवस्था दें वह माननीय नहीं हो सकती। अतः यथासम्भव शीघ्र आर्यसमाज के संविधान के लोकतांत्रिक चरित्र को सुरक्षित रखते हुए भी यह व्यवस्था की जानी आवश्यक है जिसके अनुसार वेदज्ञ विद्वानों, सर्वसंगपरित्यागी संन्यासियों तथा समाज सेवा के लिये समर्पित व्यक्तियों को आर्यसमाज में वरिष्ठता तथा प्रधानता प्राप्त हो। ऋषि दयानन्द का आर्यसमाज व्यक्ति के अधिकारों को अक्षुण्ण मानता हुआ भी मूर्खों के बहुमत शासन का समर्थक नहीं है।

प्रचार व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता—

आर्यसमाज अपने मन्तव्यों तथा सिद्धान्तों के प्रचार हेतु विभिन्न साधनों का प्रयोग करता है। जहां लेखनी के द्वारा आर्यसमाज के विद्वान् और मनीषी विचारक अपनी विचारधारा का प्रचार करते हैं वहां वाणी के द्वारा भी सहस्त्रों लोगों तक अपना संदेश पहुँचाया जाता है। प्रतिवर्ष प्रत्येक आर्यसमाज का वार्षिक अधिवेशन होता है, प्रतिसप्ताह रविवार को साप्ताहिक सत्संगों का आयोजन किया जाता है, विभिन्न पर्वों, त्योहारों तथा विशिष्ट कार्यक्रमों पर व्याख्यान, प्रवचन तथा कथा-वार्तायें रक्खी जाती हैं। वार्षिकोत्सवों की प्रथा स्वामी जी के जीवनकाल में ही आरम्भ हो गई थी। स्वयं महर्षि दयानन्द ने मेरठ, लखनऊ, लाहौर एवं बम्बई की आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सव में उपस्थित होकर अपने श्रीमुख से श्रोतृ वृन्द के हितार्थ अपनी कल्याणी वाणी प्रवाहित की थी। परन्तु आज यह अनुभव किया जा रहा है कि वार्षिकोत्सव भी नवीन प्रेरणा देने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं। रूढ़ि और प्रथापालन के रूप में उत्सवों का आयोजन कर हम उनसे वांछित लाभ उठाने में असमर्थ हैं। यदि उत्सवों की कार्यप्रणाली में समयोचित सुधार नहीं किया गया तो निश्चित है कि वे सर्वथा निर्जीव तथा शुष्क होकर हमारे लिये भारस्वरूप हो जायेंगे। उत्सवों में प्रसंगानुकूल परिवर्तन नितान्त अपेक्षित है। कतिपय सुझाव विचारणीय तथा करणीय हो सकते हैं—

१. उत्सव के पूर्व एक सप्ताह पर्यन्त किसी विद्वान् की आध्यात्मिक अथवा शास्त्रीय विषय पर कथा रक्खी जाय ताकि उत्सव का उपयुक्त वातावरण बन सके।

२. निश्चित विषयों पर विद्वानों के सुव्यवस्थित, तर्क एवं युक्ति पूर्ण भाषण कराये जायें। विषयों की सूचना प्रकाशित विज्ञापनों और कार्यक्रमों द्वारा जनता को दी जाये।

३. विभिन्न प्रबुद्ध वर्ग के लोगों को विशेष रूप से आमंत्रित किया जाय तथा व्याख्यानों और कार्यक्रमों के बारे में उनकी प्रतिक्रियाओं को महत्त्व दिया जाय। प्राध्या-

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पक, वकील, छात्र, लेखक, पत्रकार आदि बुद्धिजीवी वर्गों को आकृष्ट करने हेतु विशिष्ट भाषण कराये जायें।

४. राजनैतिक विवादपूर्ण भाषणों को निरुत्साहित किया जाय, परन्तु सामयिक समस्याओं के प्रति आर्यसमाज के दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए जन समाज को उचित मार्ग दर्शन अवश्य दिया जाना चाहिये।

५. विशुद्ध शास्त्रीय तर्जों के मधुर, शिक्षाप्रद, भावपूर्ण भजनों के गायक संगीतज्ञ भजनोपदेशकों को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है।

वार्षिक उत्सवों को सफल बनाने में तो आर्यसमाज के सदस्यों को पर्याप्त श्रम और शक्ति का नियोजन करना पड़ता है परन्तु साप्ताहिक सत्सगों का क्रम तो वर्ष भर अविरत चलता ही रहता है। साप्ताहिक सत्संग सामूहिक उपासना की एक लोकप्रिय प्रणाली है। आर्यसमाज ने इसे अपने प्रारम्भिक काल में ही स्वीकार कर लिया था। साप्ताहिक अधिवेशनों का विधिवत् संचालन करने के लिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक निश्चित पद्धति का निर्माण किया है। प्रत्येक आर्यसमाज से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस पद्धति का पूर्ण पालन करते हुए साप्ताहिक कार्यक्रम को अधिकाधिक लोकप्रिय, रोचक तथा उपादेय बनाता रहे। साधारणतः रविवारसरीय सत्संगों में सामूहिक संध्या, यज्ञ, भजन, किसी आर्ष ग्रन्थ की कथा तथा प्रवचनों का कार्यक्रम रहता है। होता यह है कि संध्या और अग्निहोत्र के कार्यक्रमों में सभासदों की उपस्थिति नगण्य रहती है। इसी प्रकार सत्सगों में गाये जाने वाले भजनों की गुणवत्ता, उनके भाव सौन्दर्य तथा गायन कौशल की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इसी प्रकार निश्चित एवं उपयोगी विषयों पर प्रवचन कराने की अपेक्षा प्रवचन के लिये विषय चयन का दायित्व वक्ता पर ही छोड़ दिया जाता है।

साप्ताहिक सत्संगों को प्राणवान्, प्रेरणाप्रद तथा जीवन्त बनाने के लिये निम्न कदम उठाये जाने आवश्यक हैं। संध्या और यज्ञ एक सुयोग्य, सुपठित तथा शास्त्रज्ञ पुरोहित के मार्ग दर्शन में सम्पन्न होने चाहियें। ईश्वर भक्ति के सरस, भावपूर्ण तथा उद्बोधक भजनों का सामूहिक गायन जिस भक्तिपूर्ण वातावरण का सृजन करते हैं उसे देखते हुए आर्यसमाज के रससिद्ध कवियों यथा अमीचंद मेहता, नाथूराम शर्मा 'शंकर', नारायण प्रसाद बेताब, वासुदेव, पं० प्रकाशचन्द्र कविरत्न आदि के काव्य रस पूर्ण भजनों का गायन अपेक्षित है। सत्संगों में कराये जाने वाले प्रवचनों का आधार वेद मंत्र ही होने उचित हैं। उपदेशों में विषयान्तर, अनावश्यक दृष्टान्त देना तथा राजनैतिक आन्दोलनों की चर्चा एवं आलोचना उनके महत्त्व को न्यून कर देती है। आर्यसमाज की बेदी की मर्यादा, पवित्रता तथा उसके अनुशासन की रक्षा होनी आवश्यक है। समाज मंदिरों की पवित्रता तथा भव्यता सुरक्षित रहनी चाहिये। यह तभी सम्भव है जब हम अनुभव करें कि आर्यसमाज मूलतः एक धार्मिक संस्था है तथा उसका मंदिर एक उपासना स्थल की ही भांति अपनी पावनता की ज्योति को विकीर्ण करता है।

यद्यपि आर्यसमाज मंदिर में किसी प्रकार की देवमूर्ति, प्रतिमा, प्रतिकृति तथा ईश्वर के काल्पनिक प्रतीक की पूजा या अर्चा के लिये कोई स्थान नहीं है तथापि अपनी पावनता, शुद्धता तथा सात्त्विकता के लिये उसे किसी भी अन्य देव मन्दिर, गुरुद्वारे, गिरजे या मस्जिद की ही भांति समझना चाहिये। यह लिखने में हमें कोई विप्रतिपत्ति नहीं है कि आज समाज मंदिर सर्वथा उपेक्षा, अवहेलना तथा अवज्ञा के पात्र बने हुए हैं। मंदिरों की शुचिता तथा उनके मर्यादा रक्षण की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। अनेक समाज मन्दिर तो ऐसे भी हैं जिनके तालों को खुले महीने और वर्ष व्यतीत हो जाते हैं। अन्य समाज मंदिरों में कन्या पाठशालायें लगती हैं अथवा मंदिरों का कोई भाग किराये पर उठा दिया जाता है। यह विचित्र विडम्बना है कि जो आर्यसमाज बृहत्तर हिन्दू समाज के उपासना स्थलों की रक्षा करने के लिये बड़े से बड़ा खतरा भी उठाने के लिये तैयार रहता है, उसी आर्यसमाज के अपने उपासनालय ही उपेक्षा के शिकार हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज मंदिरों को सच्चे अर्थों में उपासना स्थान बनाया जाय जहाँ जाने मात्र से ही व्यक्ति के हृदय में आध्यात्मिक भाव तरंगें उद्वलित होने लगें तथा वह संध्योपासना, अग्निहोत्र, भजन एवं स्वाध्याय जैसे कृत्यों में पूर्ण अभिरुचि ले सके। समाज मंदिर का मुख्य उपासना भवन विशाल महापुरुषों के चित्रों से सुसज्जित, हवन पात्रों, स्वाध्याय योग्य ग्रन्थों तथा अन्य वस्तुओं से परिपूर्ण होना चाहिये। मन्दिर में स्नानागार, शौचालय, सेवक के निवास आदि के लिये पृथक् स्थान होना अपेक्षित है। समाज के अधिकारियों का प्रमुख कर्त्तव्य है समाज मंदिर को एक भव्य, आकर्षक तथा प्रेरणास्पद स्वरूप प्रदान करना।

आर्यसमाज का उपदेशक वर्ग—

कोई संस्था अपने विशाल भवनों, अट्टालिकाओं अथवा अन्य भौतिक संभारों के कारण न तो लोकप्रियता ही अर्जित करती है, और न उसके द्वारा लोक हित साधन ही होता है। वस्तुतः संस्थाओं को प्राणवान् बनाने वाले वे उपदेशक तथा प्रचारक होते हैं जो निश्चित ध्येय की पूर्ति के लिये 'कार्यं वा साधयेयम् शरीरं वा पातयेयम्' का लक्ष्य लेकर प्रचार क्षेत्र में अवतरित होते हैं। निश्चय ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वह आर्य समाज का स्वर्ण युग था जब पं० गुरुदत्त जैसे मनस्वी, पं० लेखराम जैसे बलिदान की भावना से सम्पन्न, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे अपूर्व त्यागी तथा स्वामी दर्शनानन्द जैसे अध्ययनशील, तर्क पटु तथा विचक्षण उपदेशक प्रचार क्षेत्र में अपना योगदान कर रहे थे। उपदेशकों के प्रशिक्षण हेतु लाहौर में दयानन्द उपदेशक विद्यालय तथा आगरा में मुसाफिर विद्यालय चलाया जाता था। इन उपदेशक विद्यालयों में जहाँ वैदिक शास्त्र, अन्य धर्म ग्रन्थ, न्याय, दर्शन, तर्क आदि विषयों की उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती थी, वहाँ अध्येता छात्रों को वक्तृत्व कला, शास्त्रार्थ कला एवं वाद विवाद का सर्वांगीण अभ्यास भी कराया जाता था। लाहौर का उपदेशक विद्यालय जहां स्वामी स्वतंत्रानन्द जी तथा स्वामी वेदानन्द जी जैसे महान् विद्वान् संन्यासियों के द्वारा संचालित होता था, तो आगरे के आर्यमुसाफिर विद्यालय की स्थापना पं० भोजदत्त जी ने उस अमर हुतात्मा आर्य पथिक लेखराम की स्मृति में की जिसने वैदिक धर्म के प्रचारार्थ अपने आप की आहुति दे डाली थी। पं० महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाजिल, ठाकुर अमर सिंह जी (वर्तमान में अमर स्वामी सरस्वती) तथा कुंवर सुखलाल आर्य मुसाफिर जैसे योग्य उपदेशकों को जन्म देने का श्रेय मुसाफिर विद्यालय को ही है।

आज आर्यसमाज में उपदेशकों के प्रशिक्षण की कोई सुचारु एवं समुचित व्यवस्था नहीं है। ईसाई धर्म प्रचारक जिस प्रकार समर्पित जीवन वाले व्यक्तियों का चयन कर उन्हें धर्म प्रचार के लिये शिक्षण देते हैं, उसी प्रकार आर्यसमाज को भी एक केन्द्रीय उपदेशक विद्यालय की अविलम्ब स्थापना करनी चाहिये। उपदेशक अपनी-अपनी रुचि के अनुसार विशिष्ट अध्ययन सम्पन्न हों तथा परमत समीक्षण में विशेष योग्यता (Specialisation) अर्जित करें। संगीत भी धर्म प्रचार का एक सशक्त माध्यम है। यद्यपि आर्यसमाज में संगीत एवं भजनों के माध्यम से प्रचार करने की परिपाटी पर्याप्त पुरानी है किन्तु यह एक तथ्य है कि संगीत कला निष्णत भजनोपदेशकों की संख्या नगण्य है। अतः संगीत की उच्च शिक्षा की व्यवस्था होना भी आवश्यक है। उपदेशक वर्ग को समाज के अधिकारियों द्वारा पूर्ण सम्मान प्राप्त हो, अन्यथा जिस संस्था का उपदेशक समाज अपने अनुयायियों का आदर-भाजन न होगा, उसकी बात अन्य लोग क्यों सुनने लगें ?

आर्यसमाज का साधु वर्ग

आर्य समाज की स्थापना एक संन्यासी ने की थी जिसने लोकहित के लिये न केवल अपना वैभव सम्पन्न गृह तथा स्नेहास्पद माता-पिता का ही परित्याग किया, अपितु जिसने मनुष्य के चरम लक्ष्य मोक्ष तथा उसके साधनभूत समाधि के आनन्द का भी परित्याग किया था। इस अद्वितीय अपरिग्रही, परिव्राजक शिरोमणि दयानन्द के आर्यसमाज में कालान्तर में उच्चकोटि के चतुर्थाश्रमी संन्यासी हुए जिन्होंने अपने त्याग, तपस्या तथा आत्मिक बल से देश-जाति और धर्म का अभ्युत्थान किया। स्वामी श्रद्धानन्द जैसे राजर्षि, स्वामी सर्वदानन्द जैसे वीतराग भिक्षु, महात्मा नारायण स्वामी जैसे नेतृत्व की अपूर्व क्षमता रखने वाले संन्यासी तथा स्वामी वेदानन्द जैसे वैदुष्य के भण्डार परिव्राजकों पर आर्यसमाज उचित गर्व कर सकता है। खेद है कि आज आर्यसमाज के जीर्णशीर्ण अंगों में संजीवनी शक्ति का संचार करने वाले संन्यासियों का अभाव ही दृष्टिगोचर हो रहा है। यद्यपि वर्णाश्रम को मानव जीवन की एक आदर्श जीवन व्यवस्था के रूप में आर्यसमाज ने स्वीकार किया है, किन्तु अपने क्रियात्मक जीवन में उसे उतारने वालों की संख्या स्वल्प ही है।

दयानन्द परिव्राजक मण्डल के अन्तर्गत वैदिक धर्म प्रचार के लिए कृतसंकल्प, जीवन दानी साधुओं का संगठन होना आवश्यक है। इन्हीं संन्यासियों से यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे आर्यसमाज के संस्थापक के स्वप्न को चरितार्थ करें तथा भूमण्डल के मानवों का वैदिकीकरण तथा आर्यकरण कर 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' के लक्ष्य की पूर्ति कर सकें। यह साधुमण्डल यदि रामकृष्ण मिशन में दीक्षित होने वाले संन्यासियों की योग्यता, संकल्प शक्ति तथा सेवा भावना को अपना आदर्श मान कर चले तो सर्वोत्तम होगा। भारत के लाखों ग्राम आज वैदिक संस्कृति के उदात्त तत्त्वों को सुनने के लिये लालायित हो रहे हैं जबकि आज का स्वार्थान्ध राजनीतिज्ञ अपने राजनैतिक छल कपट और प्रपञ्चों को ग्रामों के स्वच्छ सरल वातावरण में प्रविष्ट करा कर उसे दूषित कर रहा है। दयानन्द मिशन को कृतकार्य करने वाले ये संन्यासी यदि शिक्षा, चिकित्सा, सेवा तथा जनशिक्षण के माध्यम से प्रचार कार्य करें तो देश की कोटि-कोटि जनता आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हो सकती है।

आर्यसमाज में अध्ययन और अनुसंधान की स्थिति

वस्तुतः महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के माध्यम से जो विशाल धर्मान्दोलन किया उसका सुदृढ़ आधार वेदप्रमाणवाद तथा आर्य ज्ञान का प्रोज्ज्वल प्रकाश ही था। वेद के प्रति उनकी प्रगाढ़ आस्था तथा अगाध निष्ठा का पता इसी बात से चलता है कि वेद प्रमाण को छोड़ कर वे किसी प्रकार का अवसरवादी समझौता करने के घोर विरोधी थे। निश्चय ही परवर्ती आर्य विद्वानों ने अपने विशद अध्ययन, अपार वैदुष्य तथा तलस्पर्शी शास्त्रालोचन के द्वारा महर्षि के वैदिक दृष्टिकोण की यथार्थता का डिंडिम, घोष समस्त संसार में किया है। आज न केवल भारतीय वेदज्ञ अपितु पाश्चात्य विपश्चत् समुदाय भी वेदों के प्रति दयानन्द की धारणाओं तथा आस्थाओं की सत्यता स्वीकार करने लगा है तथा विभिन्न वेद भाष्यकारों तथा वेद व्याख्याकारों ने दयानन्द के वैदिक मन्तव्यों की वैज्ञानिकता, युक्ति एवं तर्कपूर्णता तथा व्यावहारिक उपयोगिता को मान लिया है। अतः वेदानुसंधान तथा अन्वेषण कार्य को एक नवीन दिशा प्रदान करना आवश्यक है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार

भारत का भाग्य
१८७५ से १९७५ तक

इन्द्र आसां नेता बृहस्पति र्दक्षिणा यज्ञः पुर एनु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जन्तीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम।। (ऋ० १०-१०३-८) (साम-१८५६)
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात्।। (ऋ० १०-१०३-९) (साम-१८५७)

क्या आज भारत का आसमान विजय घोष से गूंज रहा है? १८७५ में भी नहीं गूंज रहा था।

सौ साल एक देश, एक जाति और एक राष्ट्र के जीवन में कम नहीं होते। संयुक्त राज्य अमेरिका अपना २०० वां जन्म दिन ४ जुलाई १९७६ को मनाएगा। दो सौ वर्षों में अमेरिका ने जो भौतिक प्रगति की है, जो वैज्ञानिक उन्नति की है, जो आर्थिक समृद्धि प्राप्त की है, वह अतुलनीय है। इसकी तुलना में भारत कहां है?

एक सामान्य भारतीय की दृष्टि से, यदि पिछले सौ सालों के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाय तो क्या चित्र सामने आता है।

१. यह देश अनाम है। भारत प्रायद्वीप एक देश है एक राष्ट्र है, इस विश्वास का सर्वथा अभाव है। भारत विखण्डित है। भारत प्रायः द्वीप को ब्रिटिश लोग "इण्डियन सबकांटीनेंट" (भारत उपमहादेश) कहते थे। आज का शासक भी यही कहता है। भारत का अस्तित्व तक मिटाने का प्रयत्न है।

२. संयुक्त राष्ट्र के १६२ सदस्य देशों में दरिद्रतम देश भारत, बंगला देश, पाकिस्तान, श्रीलंका और अफगानिस्तान हैं। शासन बदलता है, राज पलटता है, पर देश का भूगोल और प्राकृतिक सीमा नहीं बदलती। इस सत्य को क्या स्वीकार किया जा रहा है?

३. १८७५ में केवल अफगानिस्तान भारत से कटा हुआ था पर १९७५ में चीन के अधिकार में अन्यून ४८००० वर्गमील जमीन थी। और तो और १९४७ के बाद काश्मीर विभक्त हो गया। पर किसी को इसकी व्यथा नहीं?

४. क्या भारत के ६० करोड़ निवासियों में एक भी है, जो अपने को भारतीय कहता हो, भारतीय होने का गर्व करता हो?

१९७५ में स्टेट्समैन, थियोसॉफिकल सोसायटी और आर्यसमाज ने अपनी जन्म शताब्दी मनाई। जनक्रान्ति की सम्भावना से भयभीत और छिन्न-भिन्न हो जाने के भय से ग्रस्त 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' ने ९०वां जन्म दिन मनाया। इसको इसने नाम दिया—"न्यू इरा ऑफ प्रोग्रेस।"

१८७५ के स्टेटसमैन में सम्पादक के नाम छपे पत्रों में एक पत्र इस आशय का छपा था—क्या अंग्रेजी भारत के लिए उपयोगी है? १८५३ में लार्ड डलहौजी के कहने पर 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' ने मुनादी पिटवाई थी।

कम्पनी सरकार बहादुर की नौकरियाँ केवल अंग्रेजी जानने वालों को मिलेंगी। इससे पहले मेकाले की प्रेरणा से स्थापित अंग्रेजी स्कूल खाली रहते थे। यद्यपि ब्राह्मणों के लिए शिक्षा मुफ्त थी। इस घोषणा के बाद स्कूल भर गए। इसके २२ साल बाद ही अंग्रेजी की उपयोगिता पर सन्देह किया जाने लगा था। इस पत्र के उत्तर में यही कहा गया था—अंग्रेजी ज्ञान की खिड़की खोलती है।

१९७५ और १९७६ में तो अंग्रेजी की उपयोगिता में कोई सन्देह ही नहीं करता। स्थिति यह है कि ऋषि दयानन्द के स्थापित आर्यसमाज और उनकी प्रतिनिधि सभा 'सार्वदेशिक सभा' में नौकरी की खोज में जाने वाले से पूछा जाता है—क्या आप धाराप्रवाह अंग्रेजी बोल सकते हैं?

इसी सभा ने और अन्यों ने ऋषि-भाष्य को छापा है। पर संस्कृत का मूल भाग नहीं छापा। केवल हिन्दी अनुवाद मात्र छापा है। पर अंग्रेजी में छपा है। क्योंकि यह अपना नाम बताती है—'इण्टरनेशनल एरियन लीग' आर्यसमाज के मंचों से भी कहा जाता है—आर्यसमाज अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है।

इस दृष्टि से एक सामान्य भारतीय आर्यसमाज से क्या आशा कर सकता है?

(शेष पृष्ठ ३५ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भारतीय संस्कृति की गंगा दक्षिण भारत से विदेशों को

—श्री भ० हनुमन्तराव

इस विषय में सहज ही कई वाद-विवाद हैं कि भारतीय सांस्कृतिक साम्राज्य के निर्माण में किस प्रान्त ने कितना भाग लिया है ? तो भी, भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में 'विविधता में एकता' वाली बात प्राय: सुनने में आती है। इसका तात्पर्य यही है कि हर एक प्रान्त अपनी विशेषता रखता है। अत: विदेशों में फैली भारतीय संस्कृति में आन्ध्रों का भाग निश्चित करना उतना कठिन नहीं है। पंडितों की राय है कि इस निश्चय में साहित्य की अपेक्षा पुरातत्त्व के प्रमाण ही अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक हैं। उन्हीं के आधार पर हम संस्कृति के विस्तार का निर्णय कर सकते हैं।

विदेशी सम्बन्ध के कारण

विपुल धन-धान्य से भरा आन्ध्र प्रदेश प्राचीन काल से ही सुदूर देशों से व्यापार-सम्बन्ध रखता था। उसके खेतों में बहुत अनाज होता था। लोगों ने पेशेवार संघ (श्रेणी) बनाकर लोहा, वस्त्र, लकड़ी, कपड़ा आदि धन्धों को उन्नत किया था। सातवाहन राजाओं के शिलालेखों में १६ पेशेवार संघ उल्लिखित हैं। सातवाहन राजाओं के सिक्कों पर बना नौका-चिह्न उनके नौका-बल और उनके द्वारा विदेश-व्यापार को मिले प्रोत्साहन का ही प्रमाण है। आन्ध्र-प्रदेश में वुनकोंडा, नेल्लूरु, नागार्जुनकोंडा, कोंडापुर आदि जगहों में रोमन सम्राटों के अनेकों सिक्के मिले थे। डा० राधाकुमुद मुखर्जी का मत है कि ये सिक्के आन्ध्र में बनी वस्तुओं का निर्यात करके अर्जित किये गये थे। आन्ध्र के पूर्वी तटवर्ती मनार्फा (मोटुपल्लि) कोट्टिस (कोत्तपट्टणम्), कटकोसिलास (गटशाला), कोडूर (कोडूरु), अल्लोसैन (कोरंगि), मैसिलीयास (मछिलीपट्टणम्) आदि बन्दरगाह इस विदेशी व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। यह बात ईसा की पहली शताब्दी के आरम्भ में भारत की यात्रा करने वाले प्लिनी और टालमी नामक यूनानी इतिहासकारों ने बताई थी। ई० सन् ७८ के लगभग एक अनाम ग्रीक नाविक की पुस्तक 'लाल समुद्र पर दिन-चर्या' में कहा गया है कि तब तक दक्षिण भारत के निवासी अफ्रीका के तटवर्ती प्रदेशों और एशिया के पूर्वी द्वीपों में उपनिवेशों की स्थापना कर चुके थे। भारत और इण्डोनेशिया की शिल्पकला की खोज करने वाले डा० आनन्द कुमारस्वामी के निर्णय के अनुसार पूर्वी द्वीपों में सर्वप्रथम भारतीय उपनिवेशों की स्थापना करने वाले आन्ध्र हैं।

व्यापार द्वारा निर्मित ये विदेशी सम्बन्ध धर्म प्रचार की आकांक्षा के कारण और भी मजबूत बने। जाति और वर्ण के भेद-भावों की उपेक्षा करके शान्ति, समता और सहृदयता की वृद्धि करने वाला धर्म एशिया के लोगों के द्वारा समादृत हुआ। कहा जा सकता है कि अशोक की मृत्यु के बाद समूचे भारत में बौद्ध मत को प्राप्त राजाश्रय कम हो चला था। शुंग और सातवाहन राजाओं के काल में वैदिकधर्म के पुनरुद्धार का तीव्र आन्दोलन चलने लगा। इक्ष्वाकु राजा भी वैदिक धर्म के पोषक और समर्थक थे। पल्लव राजाओं के समय में पाशुपत, कालमुख आदि रूप में भी वैदिक धर्म प्रबल हुआ। इस वातावरण में बौद्धों को अपनी मातृभूमि की अपेक्षा पूर्वी देशों में ही अधिक गौरव सम्मान मिला। प्रतीत होता है कि इसी कारण असंख्य बौद्ध पूर्वी देशों में गये और वहां उपनिवेश बनाकर रहने लगे। अब हमें देखना है कि इस प्रकार बने उपनिवेशों ने किस प्रकार उन देशों में संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया है।

पूर्वी देश

बर्मा : ईसा पूर्व पांचवीं शताब्दी में ही तेलांगु कहे जाने वाले 'मान' लोग बर्मा में प्रविष्ट हो गये। इनका नाम ही सूचित कर रहा है कि ये लोग तेलुगु देश से गए हुए थे। इन्होंने एक राज्य की स्थापना की थी, जिसका नाम 'रामन्नदेश' था। उसकी राजधानी हंसवती (पेगू) थी। इससे कुछ उत्तर में श्रीक्षेत्र नामक राज्य स्थित था। इसी को 'वनवासि' भी कहते थे। दक्षिण भारत में 'वनवासि' (आजकल मैसूर में है) सातवाहनों के साम्राज्य का एक भाग होकर चुटुकुल सातकर्णि वंश के राजाओं के अधिकार में रहता था।

कहा जाता है कि पेगू पर ईसा की छठी शताब्दी में राज्य करने वाला 'आनलानक्रोम्' उसी समय में वेंगि और कलिंग पर राज्य करने वाले शालंकायन राजाओं के वंश का है। यह भी प्रसिद्ध है कि इसी के वंशजों ने बर्मा में बौद्ध मत की नींव डाली। डा० नीहाररंजन रे के अनुसंधानों के अनुसार अमरावती नागार्जुनकोंडा प्रान्त से ही बौद्ध मत बर्मा में पहुंचा था। बर्मा में प्रचलित 'लोकतिष्य अर्थकथा' में और आन्ध्रदेश में प्रसिद्ध 'कोल्लेटिदहन' कथा में कुछ भी भेद दिखाई नहीं देता। हाल ही में 'प्रोमलोकिबोगोन' नामक जगह में ईसा की छटी शताब्दी का एक बौद्ध स्तूप मिला था। उससे निकली बुद्ध की मूर्तियों के हाथों की अंगूठियां, कानों के कर्णफूल आदि आन्ध्र शिल्पकला के प्रभाव का डंका बजा रहे हैं। वहां के शिला-लेख ईसा की पांचवीं शताब्दी की तेलुगु-कन्नड़ लिपि में लिखे गये थे।

मलाया

मलाया में आज भी विदेशी लोगों को क्लिंग (कलिंग) कह कर पुकारा जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि मलाया में प्रवेश करने वाले प्रथम विदेशी कलिंगवासी थे। कलिंग से विदेश के लिए प्रस्थान करने वाले लोग पलूरु नामक बन्दरगाह से रवाना हुए थे। कुछ विद्वानों का भ्रम है कि कलिंग उड़ीसा प्रान्त ही है। एक समय गंगा-गोदावरी के बीच का सारा पूर्वी भाग कलिंग कहा जाता था। इसमें उत्तर, मध्य और दक्षिण कलिंग या त्रिकलिंग नामक तीन भाग थे। 'उत्तर कलिंग ही उत्कल बना, त्रिकलिंग ही त्रिलिंग बना—' ऐसा कुछ लोगों का तर्क है। कुछ भी हो, उत्तर आन्ध्र देश कलिंग नाम से पुकारा जाता था—यह बात निर्विवाद है। पलूरु (पालूरु) गंजाम जिले के 'चिनका सरसु' (चिलका

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नामक झील) के दक्षिणी कोने पर है। (पल्लु+उरु= पाल्रु—तेलुगु में इस शब्द का अर्थ दंतपुरम् होता है) यही संस्कृत साहित्य का दंतपुर रहा होगा। यद्यपि आजकल यह उत्कल प्रान्त में मिला हुआ है, फिर भी निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि यह सारा प्रान्त आंध्र ही था। यह बात कई उदाहरण देकर निरूपित की जा सकती है कि पल्लूरु से कलिंगांध्र मलाया में प्रवासी बनकर गये थे। मलाया में शानकोलक में बुद्ध की कुछ कांस्य मूर्तियाँ मिली थीं जो गुंटूरु जिले में बापट्ला तालुका स्थित बुद्दाम नामक गाँव में प्राप्त मूर्तियों से मिलती-जुलती हैं। मलाया के लिगर नामक प्रदेश में जो हिन्दू देवालय हैं, उनमें डंडवल्लि (गुंटुरु जिला, आन्ध्र) के गुहालय की प्रतिच्छाया दिखाई देती है। कोलानेर्लिनर्सिंग और केडाट्टा में जो शिलालेख मिले हैं, वे पांचवीं शताब्दी की वेंगि लिपि में हैं।

हिन्दचीन

हिन्दचीन में सबसे पहले उपनिवेश बनाने वाले आंध्र हैं। गौतमीपुत्र सातकर्णि (ईसा की पहली शताब्दी) के समय में कौंडिन्य नामक एक ब्राह्मण युवक ने उस देश की 'सोमा' नामक राजकुमारी से विवाह करके 'कौंडिन्य-सोम' वंश की स्थापना की थी। उसके वंशजों ने चम्पा आदि राज्यों पर विजय पाई थी। यह कहा जा सकता है कि चम्पा राज्य पूर्ण रूप से आन्ध्रों का उपनिवेश है। उस राज्य की राजधानी 'सिंहपुरम्' है। उसके राष्ट्रों के नाम अमरावती, कौथ्र री, विजया, पंडुंगा हैं। ये सब आंध्रप्रदेश के स्थलों के ही नाम हैं। सिंहपुरम् विशाखपट्टणम् जिले में ईसा की चौथी-पांचवीं शताब्दी में राज्य करने वाले माठरों की राजधानी थी। आजकल यह सिंगपुरम् नामक एक छोटे गांव के रूप में 'चिकाकोल' और 'नरसन्नपेटा' के बीच में है।

अमरावती—यह प्रसिद्ध बौद्ध क्षेत्र है (गुंटूरु जिला)।

कौथारा—समुद्रगुप्त की 'इलाहाबाद-प्रशस्ति' में पिष्टपुरम् (पिठापुरम्) के समीप माना गया कोतूरु ही कौथारा है। विजया :—श्रीपर्वत विजयपुरि (नागार्जुनकोंडा) ही विजया है। पंडुंगा : नेल्लूरु जिले का पंडुरंगम् ही पंडुंगा है। इन प्रदेशों से प्रवास के लिए जानेवाले आंध्रों ने अपनी मातृभूमि की ममता के कारण अपने नये उपनिवेशों को वे ही नाम दिये होंगे। इण्डोचीन में और स्थित एक भारतीय राज्य कम्बोज है। इस राज्य और तेलुगु देश में प्रसिद्ध कम्बोजराज की कहानी में क्या सम्बन्ध है—यह अनुसंधान करके देखना है।

चम्पा और कम्बोज राज्यों के राजाओं के नाम वेंगि के शालंकायन और विष्णुकुंडिन वंश के राजाओं के नामों के समान (चंडवर्मा, इन्द्रवर्मा) होते थे। हो सकता है कि आज भी इंडोनेशिया के लोगों के नामों के अन्त में जो 'फान' शब्द दिखाई देता है, वह 'वर्मन्' का ही अपभ्रंश रूप हो। इन राजाओं ने भी पल्लवों की तरह 'धर्ममहाराजाधिराज' की उपाधि धारण की थी और वेदादि ग्रन्थों का अध्ययन किया था। वोकन नामक जगह से जो शिलालेख मिला है उसकी लिपि वासिष्ठीपुत्र सातकर्णि की कन्हेरी में प्राप्त शासन-लिपि की प्रतिलिपि है। बाद के शिलालेख वेंगिलिपि में हैं। हिन्दचीन में शालिवाहन संवत् का इस्तेमाल हुआ। कम्बोज देश के राजा पंचम जयवर्मा (ई० सन् ९६८) ने अपनी तुलना श्री शैल (कर्नूल जिला) से की थी।

इन्डोनेशिया

फर्गुसन नामक विद्वान् का मत है कि वेगू और कम्बोज देशों से जाकर भारतीयों ने इंडोनेशिया पर आधिपत्य कर लिया था। जावा का दूसरा नाम कलिंग है। यही बात इस सच्चाई का निदर्शन करती है कि जावा पर कलिंगांध्रों ने अधिकार कर लिया था। इन द्वीपों के शासक भी वर्मा नाम से विभूषित थे। कहते हैं कि उनमें पुराणवर्मा नामक राजा ने एक हजार गायों का दान किया था। इस प्रकार के दानों की चर्चा अक्सर आंध्र देश के सम्राटों के शिलालेखों में मिलती है। कहा जाता है कि विजयपुरी में इक्ष्वाकु वंश के संस्थापक श्री शान्तमूल एक लाख गायों और एक लाख हलों के प्रदाता थे।

इंडोनेशिया में कई जगह अमरावती की शिल्प-कला की परम्परा में ढले हुए अनेक शिल्प मिले हैं। जावा के शिल्पों में बोरोबुदूर शिल्प दुनिया भर में प्रसिद्ध है। यहां कलाकार ने एक पहाड़ को संख्यातीत उद्देशिक स्तूपों में बदल डाला था। आंध्र देश में 'बोज्जनकोंडा और लिंगालमेट्टा (विशाखपट्टणम् जिला) देखने वालों को बोरोबुदूर याद आयेगा। यहां पहाड़ में निर्मित उद्देशिक स्तूपों को ही बाद में 'लिंगालमेट्टा' कहा गया।

हिन्दू धर्म के साथ साथ महाभारत, रामायण आदि इतिहास भी सुगंध द्वीपों में गये। तेलुगु देश की तरह यहाँ भी चमड़े के खिलौनों के खेल लोगों के विनोद के साधन थे। उन खेलों के इतिवृत्त ऐतिहासिक कहानियां ही हैं। ये कहानियाँ 'कवि' भाषा में लिखी हुई थीं, जिसमें नब्बे प्रतिशत संस्कृत के शब्द थे। लिपि वेंगि लिपि ही है। प्रख्यात विद्वान् क्रोम का निर्णय है कि बोर्नियो में मिला यूपा' शिलालेख वेंगि-लिपि में लिखा गया है। इन द्वीपों में भी शालिवाहन संवत् का प्रयोग होता था।

सिंहल (लंका)

आंध्र और सिंहल देशों के बीच का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। बौद्ध साहित्य में सिंहल को नागलोक कहते हैं : कृष्णा नदी का मुखदेश भी नागदेश कहा जाता था। पूरब के तटवर्ती प्रदेशों से ही नाग जातियां सिंहल में प्रवासी बनकर गयी थीं—ऐसा हम अनुमान कर सकते हैं। यदि रामायण में उल्लिखित लंका ही सिंहल है तो रावण का दंडकवन प्रांत को (जनस्थान) कहना ध्यान देने की बात है। सिंहल में पहुँची बुद्ध की दंत-कथाओं में कृष्णा नदी-मुख में स्थित 'वज्रालदिन्ने' (एक जगह का नाम) की चर्चा आती है। ऐसा इतिहास है कि सिंहल के राजा विजय और क्षेमसिंह ने कर्मराष्ट्र से कम्मसालियों (लुहारों) को बुलाया था। कहते हैं कि आचार्य नागार्जुन ने तब तक भारत में लुप्तप्राय 'प्रज्ञापारमिता' शास्त्र को सिंहल से लाकर उसकी

(शेष पृष्ठ ४३ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

धर्म और युद्ध

युद्ध संबंधी हिन्दू दृष्टिकोण का शास्त्रीय विवेचन

★

हिंदू शास्त्र अहिंसा को परम धर्म मानते हैं, परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि उनमें बल का प्रयोग एकदम वर्जित माना गया है। हिन्दू दृष्टिकोण में ऐसे सुदूर आदर्श की कठोरतापूर्वक स्थापना नहीं की गई है जिस के सम्बन्ध में कोई छूट ही न दी जा सके। दिव्यता सामान्य जीवन से अलग होकर कहीं न मिलेगी। प्रत्येक विशिष्ट परिस्थिति की सुनिश्चित आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाता है और उनके अनुकूल सिद्धान्त बनाये जाते हैं। दूर का आदर्श व्यावहारिक कार्यक्रम से भिन्न होता है।

बल का अनावश्यक और अनुचित प्रयोग हिंसा है। जब आश्रमवासियों को अनार्य जातियां सताती थीं तो वे बिना बदला लिए अत्याचारों को सहन करते रहते थे, परन्तु वे आशा करते थे कि शत्रुओं के आक्रमण से क्षत्रिय लोग उन्हें बचायें। ऋग्वेद में कहा गया है—'जो ब्राह्मणों को कष्ट देते हैं, उन सबके विनाश के लिए मैं रुद्र के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाता हूँ। मैं धर्मात्माओं की रक्षा के लिए लड़ता हूँ और मैं स्वर्ग तथा पृथ्वी में व्याप्त हूँ।'

जहां एक ओर हमसे कहा जाता है कि हम भौतिक पाप पर आध्यात्मिक बल द्वारा विजय पाने का प्रयत्न करें—जैसा कि वसिष्ठ-विश्वामित्र संघर्ष से स्पष्ट है—वहां यह भी अनुमति दी गई है कि हम पाप का भौतिक रूप से प्रतिरोध करें। यद्यपि सदैव इस बात पर जोर दिया गया है कि शत्रु को आत्मिक बल से जीतने का प्रयत्न किया जाए, फिर भी बल-प्रयोग का एकदम निषेध नहीं किया गया है। संसार से विरक्त साधु और तपस्वी लोग, जिनका सुसंगठित समाजों के कल्याण से सीधा सरोकार नहीं है, व्यक्तियों या समुदायों की रक्षा के लिए भले ही शस्त्र न उठायें, परन्तु नागरिकों पर ऐसी कोई रोक नहीं है कि आवश्यक या संभव होने पर वे शस्त्रों द्वारा आक्रमण का मुकाबला न करें। बुद्ध से एक योद्धा सेनापति सिंह ने पूछा, "क्या अपने घर-बार की रक्षा के लिए युद्ध करना बुरा है?" बुद्ध ने उत्तर दिया, "जो दंड का पात्र है, उसे दंड दिया ही जाना चाहिए। तथागत की शिक्षा यह नहीं है कि जो लोग शान्ति बनाये रखने का कोई उपाय शेष न रहने पर धर्म के लिए युद्ध करते हैं, वे दोषी हैं।"

भगवद्गीता में भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया है। इसमें अर्जुन को, जो अपने धर्म का पालन करने से हिचक रहा था, स्वधर्म का उपदेश दिया गया है। अहिंसा जीवन के अंतिम दो सोपानों—वानप्रस्थ और संन्यास—के लिए है। अर्जुन क्षत्रिय गृहस्थ होते हुए संन्यासी के आदर्श पर नहीं चल सकता। कृष्ण ने न्याय के लिए शांति के सब उपायों को आजमा देखा, परन्तु सफलता न मिली। तब उन्होंने अर्जुन को सलाह दी कि वह न्याय के लिए पापी शोषकों के विरुद्ध कर्तव्य-भावना से लड़े। उन्होंने कहा, "दुर्योधन को वह सब-कुछ बताया गया जो सत्य, उचित और हितकारी था, पर वह मूर्ख मानने वाला नहीं है। अतः मेरे विचार में उन पापियों के लिए अब यही उपाय है कि उन्हें युद्ध द्वारा दंड दिया जाये। अन्य किसी उपाय से उन्हें सही रास्ते पर नहीं लाया जा सकता।" फिर, यदि कोई मनुष्य स्वार्थ के लिए दूसरे मनुष्य का वध करता है, तो वह बुरा काम करता है, परन्तु यदि वह सब के हित के लिए किसी को मारता है, तो वह दोषी नहीं हो सकता।

हमें स्वयं बिना बुरा बने बुराई को दूर करना चाहिए। मानव-कल्याण सबसे बड़ी अच्छाई है। शान्ति और युद्ध केवल उसी हद तक अच्छे हैं, जहां तक वे मानव कल्याण में साधक हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि हिंसा अपने आप में बुरी है। पुलिस जो हिंसा करती है उसका उद्देश्य होता है सामाजिक शान्ति—आपाधापी को रोकना। युद्ध का उद्देश्य केवल विनाश ही नहीं होता। यदि युद्ध मानव-कल्याण के लिए किया जाए, उसमें व्यक्तित्व के प्रति आदर की भावना हो, तब वह क्षम्य है। यदि कोई अपराधी दूसरों के व्यक्तित्व पर प्रहार करे और हम कहें कि अपराधी के व्यक्तित्व की रक्षा होनी चाहिए, या यदि कोई गुंडा अपने से कहीं मूल्यवान् जीवनों को नष्ट करे और हम गुंडे के जीवन को पवित्र मानकर व्यवहार करें, तो हम बुराई के सामने घुटने टेकते हैं। परिस्थितियों से अलग करके बल-प्रयोग को अच्छा या बुरा नहीं कहा जा सकता। डाक्टरी आपरेशन से रोगी को कष्ट तो होता ही है, किन्तु उसका उद्देश्य रोगी की जान बचाना है। सारा अंतर इस बात में है कि चाकू चिकित्सक का है या हत्यारे का।

इस अपूर्ण संसार में सब मनुष्य संत नहीं हैं। ससार का काम चलाते रहने के लिए बल का प्रयोग करना ही पड़ेगा। सतयुग में चाहे बल-प्रयोग की आवश्यकता न रही हो, किन्तु कलियुग में, जहां लोग धर्म से पतित हो गये हैं, बल का प्रयोग करना ही पड़ेगा। राजा दंड का धारण करने वाला—दंडधर—है। क्षत्रिय धर्म को मान्यता देने से बल-प्रयोग का औचित्य स्पष्ट होता है। मनु और याज्ञवल्क्य मानते हैं कि धर्म या कर्तव्य का पालन करने में कभी-कभी दंड की भी जरूरत होती है। वर्तमान परिस्थितियों में उच्छृंखलों को काबू में रखने, असहायों की रक्षा करने तथा मानव समुदाय में व्यवस्था बनाये रखने के लिए बल-प्रयोग आवश्यक है। परन्तु इस तरह का बल-प्रयोग विनाश के इरादे से नहीं किया जाता।

(शेष पृष्ठ ३१ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

क्षात्र शक्ति का वैदिक स्वरूप

—श्री भगवद्दत्त वेदालंकार, गुरुकुल काँगड़ी

भारत पाक युद्ध में जिस बलिदान भावना का प्रकाशन व प्रदर्शन भारतीय वीर योद्धाओं ने किया था, मातृभूमि की बलिवेदी पर हंसते-हंसते जिस आत्मोत्सर्ग का एक नवीन पाठ हमें पढ़ाया गया था, वैदिक शब्दों में वह क्षात्र भावना का ही एक प्रस्फुटन था, ऐसा हम कह सकते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि यह बलिदान भावना का प्रदर्शन अत्यन्त उत्कृष्ट और पूर्णरूप में हुआ था। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वैदिक दृष्टिकोण से यह एक परिपूर्ण क्षात्रभावना कही जा सकती है? क्या इसमें क्षात्रत्व का समग्र स्वरूप समाविष्ट हुआ है? इसका समाधान वेदों का अध्ययन करने वाले विद्वान् भलीभाँति कर सकते हैं। वैदिक साहित्य में ब्रह्म शक्ति और क्षात्रशक्ति इन दोनों का बहुत विशद वर्णन हुआ है और प्रायः इन दोनों का वर्णन साथ साथ हुआ है। क्षात्रशक्ति के असली वैदिक स्वरूप को समझने का यही रहस्य है जिसे कि हमें सदा ध्यान में रखना चाहिये। अब हम क्षात्रशक्ति का वैदिक स्वरूप क्या है यह संक्षेप में प्रदर्शित करते हैं।

वेद प्रतिपादित मानव उत्पत्ति हाड़मांस वाली स्थूल देह की उत्पत्ति नहीं है। वह ब्राह्मणी में ब्रह्म की और वीर क्षत्राणी में क्षात्र की उत्पत्ति होती है। इसी कारण आदर्श ब्रह्म और आदर्श क्षत्र की उत्पत्ति का उपक्रम उसके उत्पन्न होने से पूर्व ही गर्भाधानादि संस्कारों द्वारा किया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वैदिक क्षात्रशक्ति स्वाभाविक जीवनपर्यन्त एक रस व सततरूप में रहने वाली होती है। वह जन्मजात क्षत्रत्व सामयिक वातावरण व बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करता। वैदिक वीर पुरुष का क्षत्रत्व उसका अपना स्वरूप व आत्मरूप होता है। वीरप्रसविनी क्षत्राणी से वेद यह आशा करता है कि 'आवीरोऽत्र जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः' हे वीर प्रसविनी! तेरा यह दशमासी पुत्र वीर पैदा हो। इस प्रकार वैदिक उत्पत्ति वीर की उत्पत्ति बताई गई है। अब इस वीर के जन्मजात क्षत्रत्व को राष्ट्र का पुरोहित और भी तीक्ष्ण पैनी और अजर अमर बनाता है। उसके ये उद्गार हैं—

सेशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णु येषामस्मि पुरोहितः।

अर्थात् जिन ब्रह्मशक्ति व क्षत्रशक्ति आदि काम में पुरोहित विजयी बना हूँ उसका क्षात्रबल सम्यक् प्रकार तीक्ष्ण होकर अजर अमर बने।

अथर्व वेद के ७।८४ सूक्त में 'क्षत्रभृद्' अग्नि का वर्णन आता है अर्थात् क्षत्रत्व को धारण करने वाली अग्नि किस प्रकार की होनी चाहिये यह इस सूक्त में दर्शाया गया है। इस अग्नि का स्वरूप संक्षेप में इस प्रकार है—

अनाधृष्यः—शत्रु से धर्षण न होने वाला।
अमर्त्यः—चिरस्थायी एकरस अमरण धर्मा।
विराट्—विशिष्ट प्रभावपूर्ण दीप्ति से युक्त।
विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन्—

सब बीमारियों को दूर करने वाली। कष्ट सहिष्णुता और तप आदि इतना उग्र होना चाहिए कि जिससे शरीर में व्याधि का नामोनिशान न रहे। क्योंकि बीमार आदमी द्वारा क्षात्रशक्ति का प्रदर्शन सम्भव नहीं है। सच्चा क्षत्रिय बनने के लिए अत्यन्त संयम नियम व तप आदि की आवश्यकता है। इस सूक्त में वरणीय क्षात्र ओज को भी धारण करने का विधान हुआ है।

अपानु दो जनममित्रायन्तम्—

अमित्र अर्थात् शत्रुता का आचरण करने वाले मनुष्य व मनुष्य समुदाय को दूर करने में यह अग्नि सक्षम होनी चाहिये।

उरुं देवेभ्यो अकृणोह लोकम्—

इस लोक को देवों के निवास के योग्य बनाना भी इस अग्नि का काम है। इससे यह स्पष्ट है कि वैदिक क्षात्रशक्ति लोक में देवत्व के प्रसार के लिये है। क्षत्रियों का यह कर्तव्य है कि वे राष्ट्र में अनाचार व भ्रष्टाचार आदि आसुरी शक्तियों को कभी भी पनपने न दें। उनका सदा यह प्रयत्न होना चाहिये कि राष्ट्र में सत्य सदाचार आदि दिव्यशक्तियों का प्रसार होवे। अब विचारणीय यह है कि वेद के आधार पर आदर्श क्षात्रशक्ति की सर्वोच्चिता कब होती है? एक अतिप्रबुद्ध व उग्र क्षात्रशक्ति का सज्ञान नियन्त्रण व नियमन कब संभव है इत्यादि कुछ प्रश्न हैं जिनका समाधान निम्न मन्त्र द्वारा हो जाता है। मन्त्र इस प्रकार है—

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं तत्र देवाः सहाग्निना॥

अर्थात् जिस राष्ट्र में ब्रह्मशक्ति और क्षत्रशक्ति परस्पर मिलकर विचरती हैं वही पुण्यशाली लोक है; वहाँ देवता अग्नि के साथ निवास करते हैं।

इस उपर्युक्त मन्त्र में सभी बातों का समाधान मिल जाता है। यदि क्षात्रशक्ति ब्रह्मशक्ति से मिलती है तो यह

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म, अर्थ और काम

श्री पूर्णचन्द्र एडवोकेट

[भूतपूर्व प्रधान, सार्वदेशिक आ० प्र० सभा]

व्यक्ति के और राष्ट्र के चरित्र के गठन के लिए अर्थ-भावना और काम वासना की मर्यादा अनिवार्य है। अर्थ-भावना और काम वासना का सीधा सम्बन्ध मनुष्य की मानसिक व्यवस्था से है। मानसिक व्यवस्था को समझने के लिए हमें जीवात्मा के स्वभाविक गुणों को लक्ष्य में रखना होगा। वे गुण न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख और दुःख हैं। मनुष्य योनि में जो जीवात्मा है उसके ये लक्षण हैं। मनुष्य योनि में शक्ति के रूप में पंच कोष दिये गए हैं। ये कोष अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष हैं। पहले दो कोष सब योनियों में किसी न किसी रूप में पाये जाते हैं। परन्तु बाकी तीन कोष अर्थात् मन, विज्ञान और आनन्द मनुष्य योनि के लिए विशेष हैं और दूसरे रूप में हम यह समझ सकते हैं कि मनुष्य योनि में आत्मा को ज्ञान प्राप्त करने, कर्म करने और भोग प्राप्त करने के लिए चार साधन दिए गये हैं, जिन्हें अन्तःकरण चतुष्टय कहते हैं। अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार। इनमें से मन सबसे अधिक शक्तिशाली है। शेष तीन तो उसके ही अंग हैं और इस आधार पर हम समझ सकते हैं कि मन की व्यवस्था सबसे अधिक आवश्यक विचार, आचार और व्यवहार की पवित्रता से है। मन की पवित्रता के लिए पातंजल योगदर्शन में पाँच नियम और पांच यम बतायें गये हैं। नियम हैं—स्वाध्याय, शौच, तप सन्तोष और ईश्वर प्रणिधान। ये नियम व्यक्तिगत जीवन के निर्माण के लिए हैं। इनका व्यावहारिक रूप या सामाजिक रूप पांच यम हैं अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह। और ये यम और नियम मानसिक अवस्था को पवित्र और शुद्ध बनाने के लिए हैं। ज्ञान की मर्यादा स्वाध्याय से होती है और स्वाध्याय का व्यावहारिक रूप सत्य है। इसी प्रकार इच्छा, द्वेष और प्रयत्न जो मानसिक प्रतिक्रियाएँ हैं व्यक्तिगत रूप से शौच की भावना से पवित्र रहते हैं और उनका व्यावहारिक रूप ब्रह्मचर्य का पालन होता है। तप से सहनशीलता आती है और अहिंसा की भावना उत्पन्न होती है। इसी प्रकार सुख-दुःख की दशा में सन्तोष और ईश्वर पर भरोसा व्यक्तिगत रूप में आचार विचार को पवित्र रखते हैं और व्यावहारिक रूप में चोरी और कंजूसी से बचाते हैं। इन पांचों यमों और नियमों का पालन करने से पांच मुख्य बुराइयां या दुर्गुण या पाप भावना अर्थात् अहंकार काम, क्रोध, लोभ और मोह का निराकरण हो जाता है। यही पाप की जड़ है। और यदि ये पांचों विकारों का उपचार यम और नियम पालन करने से होता रहे तो जीवन में अपराध और भ्रष्टाचार नहीं रहेंगे और जीवन पवित्र बना रहेगा। यह पातंजल योग दर्शन के आधार पर सदाचार की रूपरेखा समझी जानी चाहिए और यही सदाचार सफल जीवन के लिए आवश्यक है। यही अर्थ और काम की व्यवस्था है। यही सदाचार के नियम धर्म का व्यावहारिक रूप है। यह बात बड़ी सुगमता से समझ में आ जाती है कि धर्म के ऊपर लिखे मौलिक और सार्वजनिक सिद्धान्तों के आधार पर धर्म का सार्वजनिक विश्वव्यापी रूप, प्राचीन रूप, वैदिक रूप सम्मुख आ जाता है।

इसी प्रसंग में हमें यह समझ लेना है कि धर्म के आधार पर अर्थ और काम की व्यवस्था उसी दशा में पूर्ण रूप से हो सकेगी जब राज्य शक्ति का सहयोग उसको पूर्ण रूपसे प्राप्त हो। राज्य शक्ति का सम्बन्ध दण्ड विधान और अनुशासन से है और अनुशासन के लिए शपथ की प्रथा भी राज्य नियमों का आवश्यक अंग है। चरित्र गठन के लिए अनुशासन चाहिए और अनुशासन की मर्यादा के लिए शासन चाहिए। शासन की मर्यादा और उसकी सफलता के लिए अनुशासन आवश्यक है। अनुशासन के लिए शपथ बड़ा अचूक साधन है। शपथ शासन का भी आवश्यक अंग है और सदाचार का भी। इसी प्रकार अनुशासन भी दोनों के लिए है। यह बात स्पष्ट हो जाती है कि धर्म की भावना मौलिक और सार्वजनिक रूप में शासन की व्यवस्था और अनुशासन की सुरक्षा के लिए एक समान आवश्यक है।

अब प्रश्न यह है कि शासन या राज्य शक्ति में धर्म के इस मौलिक और सार्वजनिक रूप का प्रवेश कैसे हो। हमारे भारत में आजकल लोकतंत्र और गणतंत्र है और उसका केन्द्रीय रूप और व्यावहारिक रूप वोट है। सारी व्यवस्था वोट के प्रयोग पर केन्द्रित है और यदि चरित्र निर्माण को लक्ष्य में रखकर और समितियां बनाकर या संगठन बनाकर प्रचार किया जाय तो यह चरित्र निर्माण का प्रचार धार्मिक भावना का प्रवेश नागरिकों के जीवन में करा देगा और वही नागरिक वोटर के रूप में शासन की शक्ति के अंग हैं। इसलिए यदि संगठित होकर आर्य समाज प्रचार करे कि नागरिकों का व्यक्तिगत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीवन और सामाजिक जीवन धर्म के सांचे में ढला रहे तो राजशक्ति भी मर्यादित बनी रहेगी और उसका भी आधार धर्म के मौलिक सिद्धान्त होंगे और वही सिद्धान्त सब नागरिकों के जीवन में विचार, आचार और व्यवहार की पवित्रता के आधार बने रहेंगे। महर्षि दयानन्द जब किसी विशेष बात का सफल प्रचार चाहते थे तो वे आर्यसमाज के साथ-साथ अन्य समितियों या सभाओं का संगठन भी आवश्यक समझते थे और उन्होंने गोवध के निराकरण के लिए गोकरुणानिधि में गो कृषि रक्षिणी सभाओं की स्थापना की व्यवस्था पर बल दिया था। इस पर कुछ ध्यान नहीं दिया गया और गऊवध के निराकरण के सम्बन्ध में अभी तक पूर्ण सफलता नहीं मिली है। जब दलित उद्धार के लिए और शुद्धि के प्रचार के लिए पृथक् संस्थायें या सभायें बनाकर कार्य किया गया तो बड़ी सफलता मिली। अब लगभग २८-२९ साल से भारत में स्वराज्य है। सारा विधान और संचालन वोटरों की सम्मति पर केन्द्रित है। अगर चरित्र निर्माण सभायें या समितियां बलपूर्वक सार्वजनिक रूप से प्रचार करें तो वोटरों की विचारधारा भी सुधर जायेगी और साधारण जनता भी। इस विधि से आर्यसमाज दलगत और प्रचलित राजनीति से पृथक् रहता हुआ भी धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का समावेश शासन व्यवस्था में भी करा सकेगा और अर्थ और काम की शासन व्यवस्था धर्म के मौलिक सिद्धान्तों के आधार पर हर क्षेत्र में हो सकेगी। राज आर्य सभा बनाने की भी कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। आर्य समाज अपने छठे आर्य महा-सम्मेलन में सर्व सम्मति से यह निश्चय कर चुका है कि आर्य समाज सामूहिक रूप से राजनीति से पृथक् रहेगा। राज-आर्य सभा बनाने का प्रश्न भी कई बार सामने आया परन्तु सफलता नहीं मिली।

अभी कुछ दिन पूर्व आर्य सभा नाम की एक संस्था बनाने का प्रयास किया गया परन्तु उसका भी परिणाम हितकर नहीं हुआ। अब तो सार्वदेशिक सभा यह निश्चय कर चुकी है कि चरित्र निर्माण का कार्य और उसका प्रचार सबसे अधिक आवश्यक है। उससे ही देश का भला होगा। स्वराज्य का रूप सुराज्य हो जायेगा। स्वतंत्रता मर्यादित हो जायेगी, वैदिक धर्म का प्रचार सफल हो सकेगा और सब मनोरथ पूरे हो सकेंगे।

अब आवश्यकता यह है कि ओ३म् की पताका के साथ-साथ पाखण्ड खण्डिनी पताकायें भी लगा दी जायें और नैतिक उत्थान और चरित्र निर्माण का प्रचार बलपूर्वक संगठित होकर आपसी द्वेष को भुलाकर आरम्भ कर दिया जाय। ईश्वर से प्रार्थना है कि यह शुभ कार्य सफल हो। राष्ट्र का भी भला होगा। आर्य समाज की आन्तरिक दशा भी ठीक हो जायेगी। स्थापना शताब्दी का यह सन्देश है।

अधिक से अधिक व्यक्तियों तक वेद का सन्देश पहुँचाएं।

नया वैदिक साहित्य

१. धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम

लेखक—श्री पं० शिवकुमार शास्त्री, काव्य-व्याकरण तीर्थ, संसद् सदस्य। मूल्य १)५०

पं० शिवकुमार जी शास्त्री आर्यसमाज के पुराने महोपदेशक रहे हैं। पिछले ३० वर्षों के अपने अनुभवों को उन्होंने "धरती का स्वर्ग" नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

गृहस्थाश्रम को कैसे स्वर्ग बनाया जाए? इस विषय में शास्त्री जी का मार्गदर्शन सभी के जीवन को नयी प्रेरणा देने में समर्थ है।

पुस्तक का मूल्य लागत मात्र १)५० है।

२. वैदिक गृहस्थाश्रम

पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड की महान् कृति : विवाह पर भेंट के लिए। कपड़े की जिल्द मूल्य ६)

३. धर्म का सार

स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखित यह पुस्तक प्रचार के लिए अत्यन्त उपयोगी है। साधारण व्यक्तियों को समझाने के लिए इसे ९ कथाओं में प्रस्तुत किया गया है। मूल्य १), किन्तु १०० मंगाने पर ६५) सैंकड़ा

४. महान् दयानन्द मूल्य १)५० १००) सैंकड़ा

महर्षि दयानन्द को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखते हुए पं० शिवदयालु जी ने इस अनमोल पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

५. आदर्श परिवार मूल्य ६० पैसे। ४०) सैंकड़ा

राजस्थान के भूतपूर्व मंत्री श्री युगलकिशोर द्वारा लिखित यह पुस्तक प्रचार व विवाह आदि पर बांटने के लिए विशेष उपहार है।

६. प्रभु के चरणों में मूल्य १.५०।

प्रसिद्ध विद्वान् पं० हरिशरण जी द्वारा सामवेद के कुछ मंत्रों की सरल व्याख्या प्रार्थना रूप में प्रस्तुत की गयी है। मंत्रों को पढ़ते हुए साधक भाव विमोर हो जाता है।

७. वन्दना के स्वर मूल्य ८)

संपादक—श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'

डिलक्स संस्करण १५)

अधिक से अधिक मंगाएं : बांटें

जन-ज्ञान प्रकाशन, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुष्य जन्म का लक्ष्य व उसकी सफलता

—जगदीश सिंह 'पत्रकार'

*****

हरेक कार्य की सिद्धि के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है:—(१) लक्ष्य और (२) साधन। इन दोनों में समन्वय का होना आवश्यक है तथा इन दोनों के सही स्वरूप को जानना आवश्यक है। अगर दोनों में से एक के भी स्वरूप को सही नहीं समझा गया और उनमें समन्वय पैदा नहीं हो सका तो सफलता कदापि नहीं मिल सकती। इस बात को बहुत गम्भीरता और विवेक के साथ समझने की आवश्यकता है। क्योंकि पहले हम अपने छोटे कार्यों के लक्ष्य और साधनों पर विचार करें तो फिर उसके बाद हम बड़े कार्यों पर विचार के योग्य बन सकते हैं। उदाहरण के तौर पर—हमारी प्राथमिक आवश्यकताओं में शरीर को स्वस्थ रखना और आर्थिक स्थिति को ठीक बनाना हरेक व्यक्ति के लिए प्रश्न बना रहता है और वही व्यक्ति इसमें सफल हो सकता है जो कि स्वास्थ्य रक्षा रूपी लक्ष्य के साधनों को भलीभांति समझे और उनपर आचरण करे। हम लोग यदि साधनों को जानने और समझने में भूल करते हैं, या जानते हुए भी उनपर आचरण नहीं करते यानी लक्ष्य और साधन में समन्वय नहीं करते तो परिणाम यह होता है कि स्वास्थ्य रक्षा नहीं होती। यह बात प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने अनुभव और निरीक्षण से भलीभाँति समझ सकता है। स्वास्थ्य को ठीक रखना चाहते हुए भी बहुत लोग प्रायः रोग के ही शिकार बनते रहते हैं, क्योंकि केवल चाहने से ही किसी वस्तु की उपलब्धि नहीं हो सकती। साधनों के बिना किसी काम की सिद्धि हो ही नहीं सकती। इसी सिद्धान्त को आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में भी उपयुक्त मानना पड़ेगा। अधिकतर लोगों की आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं होती और उसका मूल कारण यही है कि या तो उन्हें लक्ष्य और साधनोंका पर यथोचित ज्ञान नहीं है या उनमें समन्वय नहीं है। यह अति महत्वपूर्ण प्रश्न है।

स्वास्थ्य-रक्षा के सम्बन्ध में इस बात को जानने और समझने की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि स्वास्थ्य को लाभ पहुंचाने वाली वस्तुएं क्या हैं और उसको हानि पहुंचाने वाली क्या हैं। मनुष्य शरीर एक प्रकार का यंत्र है। इसके संचालन के लिए भोजन की आवश्यकता है। बहुत सी व्याधियां प्रायः हानिकारक पदार्थों का सेवन करने से ही उत्पन्न होती हैं जैसा कि किसी विद्वान् ने कहा कि—

लोभ मूलानि पापानि।
रस मूलानि व्याधयः॥

अर्थात् पापों का मूल कारण लोभ है और व्याधियों का मूलकारण खाने पीने की गलती है। भोजन के विषय में चार सिद्धान्तों को जानना और उनको समझकर उनके अनुरूप आचरण करना आवश्यक है।

(१) भोजन उतना ही किया जाय जितनी हमको आवश्यकता हो। उससे अधिक कदापि न किया जाय। यंत्र में जरूरत से ज्यादा कोयला या तेल डालने से मशीन ठीक तौर से काम नहीं कर सकती।

(२) भोजन केवल उन पदार्थों का ही किया जाय जो हमारी शारीरिक स्थिति के अनुकूल हों। यानी जिन पदार्थों को हम पंचा न सकें या जो हमारे शरीर में जाकर रोग उत्पन्न करें उनका कदापि सेवन न करें।

(३) भोजन को स्वाद का साधन न बनाया जाय बल्कि जीवन को कायम रखने का साधन बनाया जाय। हमको भोजन जीवन को बनाये रखने के लिए करना है न कि भोजन करने के लिए जीना है। जीवन का लक्ष्य कुछ दूसरा है और वह बहुत ऊंचा है, तथा होना भी चाहिए।

(४) भोज्य पदार्थ तथा पेय पदार्थ दोनों के लिए हमें निश्चित समय रखना चाहिए। भोजन में मितव्ययता रखनी चाहिए तथा उन्हीं पदार्थों का सेवन करना चाहिये जिनकी हमको जानकारी व भरोसा हो। मितव्ययता से व्यक्ति को सुविधा मिलती है और दूसरों के लिए भी एक उदाहरण बन जाता है। इस विषय में यह बात भी ध्यान में रखनी आवश्यक है कि हर प्रकार के नशे को त्याज्य मानना चाहिए, क्योंकि उससे अक्सर भयंकर परिणाम पैदा होते हैं। ऊपर के सिद्धान्तों को ध्यान में रख कर ही गीता में यह बतलाया गया है कि जो आदमी दुःखों से बचना चाहता है उसको खाने पीने में युक्ति अर्थात् सद् बुद्धि से काम लेना चाहिए।

व्याधि का दूसरा बड़ा कारण है सरदी गरमी को उस मात्रा को अपने शरीर पर लेना जिसको कि वह सहन नहीं कर सकता। इस कारण से लाखों आदमी बीमार होते रहते हैं। सरदी, जुकाम, बुखार, निमोनिया लू लगना आदि इसी के परिणाम हैं. अत्यधिक गरमी से प्राणान्त तक हो जाता है। हरेक व्यक्ति के शरीर में सरदी गरम सहन करने की एक सीमा होती है और उस सीमा का ध्यान रखना आवश्यक है। पशु-पक्षी और वृक्ष आदि भी सीमा से अधिक सरदी-गरमी सहन नहीं कर सकते। अतः इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए। हमारे धर्मशास्त्रों में लिखा हुआ है कि आदमी प्रकृति के नियमों को समझे और उनका पालन करे तो सौ वर्ष तक स्वस्थ जीवन बनाये रख सकता है। प्रायः यह देखने में आता है कि कई आदमी ६० और ८० से ऊपर आयु हो जाने पर भी अपने स्वास्थ्य को ठीक तौर से बनाये रखते हैं। हमें उनसे शिक्षा लेनी चाहिए।

जीवन को सुखमय बनाने के लिए स्वास्थ्य रक्षा की परम आवश्यकता है और उसके बाद दूसरी बड़ी आवश्यकता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है आर्थिक स्थिति का अनुकूल होना, क्योंकि संसार के सारे व्यवहार और शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी इसी पर निर्भर है। हरेक व्यक्ति के लिए द्रव्य उपार्जन की सीमा है लेकिन द्रव्य के व्यय के लिए कोई सीमा नहीं है। इसलिए इस सिद्धान्त पर बहुत गम्भीरता से विचार कर इसको भलीभांति समझना लेना चाहिए और नीचे लिखे हुए नियमों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए।

(१) धन मेहनत और ईमानदारी से कमाना चाहिए। चोरी और छल कपट से कमाया हुआ पैसा दु.ख का कारण हुए बिना नहीं रह सकती।

(२) आय से खर्च सदैव कम करना चाहिए, क्योंकि आय को बढ़ाना अपने वश में नहीं है लेकिन खर्च कम करना बहुत सीमा तक अपने वश में है। खर्च को बढ़ाने के कुछ मूल कारण यहां पर उद्धृत किये जाते हैं, क्योंकि इन कारणों एवं उनके दुष्परिणामों का समझना अत्यन्त आवश्यक है—

(क) ज्यादातर व्यय आदमी अपने आपको बड़प्पन दिलाने के लिए करता है। लेकिन यह बड़प्पन का सच्चा और स्थायी साधन नहीं है। और जब खर्चा कम करने के लिए ही किसी समय आदमी बाध्य हो जाता है तो उसकी हालत दयनीय हो जाती है। इसलिये पहले से ही सम्भलकर चलना चाहिये तथा अपनी आदतों व भावनाओं को बिगाड़ना नहीं चाहिए। बड़प्पन प्राप्ति के लिए सदाचार तथा समाज सेवा के मुकाबले में दूसरा कोई साधन नहीं हैं।

(ख) खर्च बढ़ाने का दूसरा कारण होता है—देखा देखी। इसमें विवेक की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि धनवान् आदमी जो काम आसानी से कर सकता है, उसकी देखादेखी गरीब आदमी वैसा काम करे तो उसका परिणाम सिवाय दुःख के और कुछ नहीं हो सकता।

(ग) बहुत सी फिजूल खर्ची कुसंगति से होती है। शराबखोरी जुआखोरी आदि बहुत से दुर्गुण संग-दोष से ही आते हैं। इसलिये इसमें सतर्क रहने की अति आवश्यकता है।

(घ) बहुत सा खर्चा आदमी अपने सुख और विलास को बढ़ाने के वास्ते करता है। लेकिन वास्तव में सुख जिस तरह सचाई और सादगी के जीवन से प्राप्त होता है वैसा विलास के जीवन से कदापि नहीं। वह सुख खाली दिखावामात्र रहता है। उदाहरणार्थ—हम अपने खाने, कपड़े, मकान, जेवर आदि में बहुत कुछ संयम रखकर, सिर्फ आवश्यक खर्च करके, अपने जीवन को स्वर्ग और दूसरों के लिए उदाहरण रूप बना सकते हैं। इसके विपरीत अनावश्य खर्चों से हम स्वयं दुःखी होते हैं और दूसरों के लिए बुरा उदाहरण पेश करते हैं।

(ङ) अपव्यय का दोष पूंजी के साथ लगा रहता और हमारा देश अब समाजवाद की ओर जा रहा है। इसलिए इस दृष्टिकोण से भी यह परम आवश्यक है कि हम अपनी आवश्यकताओं को सीमा में रखें और अनावश्यक खर्च को एक भयकर रोग समझें।

(३) हरेक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि यदि उससे बन सके तो अपनी कमाई का कुछ हिस्सा समाज सेवा में लगाये।

(४) आजकल महंगाई है, इसलिए बहुधा मनुष्यों को अपने आवश्यक खर्चे के साधन भी नहीं मिलते। ऐसी परिस्थिति में हरेक विचारशील व्यक्ति पर गहरी चिन्ता छाई लगती है। लेकिन वही आदमी प्रशंसा का पात्र बन सकता है जो कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पथभ्रष्ट न हो और अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहे।

(५) ऊपर की विचार धारा से यह संदेह हो सकता है कि कंजूसी का समर्थन हो रहा है किन्तु द्रव्य एक साधन है; वह साध्य वस्तु नहीं है। उसको साध्य वस्तु बनाना एक भयानक भूल है और व्यक्ति व समाज दोनों के लिए दुष्परिणाम पैदा करता है। इसलिए धन का सदुपयोग करने से ही व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण है।

सुख का एक फल है जो दूसरों को सुख देने वाले शुभ कर्मो रूपी बीज बोने से प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में एक महात्मा के सुन्दर शब्द उद्धृत किये जाते हैं:—

चार वेद षट् शास्त्र में, बात मिली है दोय।
सुख दीयां सुख होत हैं दुख दीयां दुख होय॥

—सन्तवाणी

इस सिद्धान्त का हरेक महापुरुष व ग्रन्थ ने उत्साह पूर्वक समर्थन किया है और विज्ञान भी इस बात को स्वीकार करता है कि जैसा बीज होता है उसके अन्दर से वैसा ही फल निकलता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जो आदमी सुखी होना चाहता है उसके वास्ते उचित है कि वह हर समय चारों ओर दुःख फैलाने से दूर और सुख फैलाने में यथाशक्ति उत्सुक एवं तत्पर रहे। फलस्वरूप उसका सुखी होना निश्चित है।

बहुधा यह देखने और सुनने में आता है कि साधनों का अभाव बता कर लोग दूसरों के सुख में सहयोग देने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। यह भारी भूल है। साधन से ज्यादा बल भावना में होता है और भावना हो तो कोई न कोई साधन अवश्य मिल जाता है।

इस बात पर गम्भीरता से विचार करने की जरूरत है कि दुनिया में नाशवानपदार्थ क्या हैं और विनाशी पदार्थ क्या हैं? जहां तक संसार की रचना और प्रकृति के कार्य का सम्बन्ध है, यह निश्चित है कि दुनिया के सब पदार्थ परिवर्तनशील हैं यानी नाशवान हैं, समय आने पर विलय होने वाले हैं। किस वस्तु का कब विलय का समय आयेगा इसका भी निश्चय करने में हम प्रायः असमर्थ से ही हैं। संसार के जितने पदार्थ हैं और जिनको हम अपने सुख का साधन मानते हैं वे नाशवान होने से किसी न किसी वक्त दुःख का कारण अवश्य बनते हैं।

(शेष पृष्ठ २८ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—स्व० श्री स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ

स्वामी दयानन्द की चार अनोखी बातें

लेख पढ़कर आपको नया प्रकाश मिलेगा—सं०

भारत भूमि संसार की सबसे अनोखी भूमि है। संसार में कोई भी ऐसा देश नहीं जिसमें छः ऋतुएँ हों। किसी में दो, किसी में पाँच ऋतुएं हैं। किन्तु एक भारतवर्ष ऐसा देश है जिसमें छः ऋतुएँ हैं। यहां जहां हिमालय जैसा सदा वर्फ से ढका रहने वाला, और जल से भरपूर पर्वत है, वहां राजस्थान सा जल शून्य मरुस्थल भी है। इसमें सब प्रकार के अन्न, सब प्रकार के फल एवं सर्वविध फूल भी मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो विधाता ने इसे स्वर्गभूमि बनाया है।

आज इस देश में श्वेत रंग वाले मनुष्यों से लेकर घोर काले वर्ण के भी विराजमान है। पुराने वैदिक धर्म के अवशेष के साथ शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन, बौद्ध आदि नाना मतमतान्तरों के होते हुए भी इन सबमें भावों की अनोखी समानता है। भारत वह देश है जिसने अपने देश से बलात् निकाले गए यहूदियों को शरण दी, जिसने घर द्वार शून्य निराश्रय पारसियों को आश्रय दिया। मुसलमान फकीरों तक को स्थान देकर अपनी उदारता की पराकाष्ठा का परिचय दिया।

इस देवनिर्मित पुण्य भूमि में आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व सौराष्ट्र के टंकारा नामक महाग्राम में त्रिवेदी ब्राह्मण परिवार में एक अनोखा बालक उत्पन्न हुआ जो, आगे चलकर स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह विचित्र महामनुष्य था। उसने कई अनोखी बातें कर डालीं, जिन्हें देख सुनकर लोग पहले चकित हुए, विरोधी भी बने। किन्तु धीरे-धीरे उन बातों को स्वीकार कर लिया। आज भी कुछ लोग ऐसे हैं जो उनका विरोध करते हैं। किन्तु साथ ही उनकी बताई बातों पर चलते हैं और कहते हैं, क्या करें, समय ही ऐसा आ गया है, काल महाबली है। स्वामी दयानन्द के इस बल को देखकर उर्दू के एक महाकवि के मुख से अनायास निकल गया—यह जमाना है शुजाअत के धनी दयानन्द का। उसने अनेक अनोखी बातें चलाईं। उन सबका यहां लिखना असम्भव है। केवल चार बातों को यहां लिखते हैं—

(१) वेद पढ़ने का अधिकार सबको है।

स्वामी दयानन्द के कार्य क्षेत्र में आने से पूर्व तथाकथित वैदिक धर्मियों ने व्यवस्था कर रखी थी कि 'स्त्रीशूद्रौनाधीयाताम्' स्त्री शूद्र वेद न पढ़ें। यदि तथाकथित शूद्र वेद कहीं से सुन लेता था (उसकी समझ में चाहे उसका एक अक्षर भी न आया हो) तो उसके कानों में गर्म-गर्म तपाया हुआ सीसा डाला जाता था। यदि अनजाने वेद वाक्य बोल बैठे तो उसकी जिह्वा काट ली जाती थी। महान् शंकराचार्य तक ने इस अन्याय का समर्थन किया है। इससे शूद्रों को ज्ञानहीन रखने की भरसक चेष्टा की जा रही थी।

स्वामी दयानन्द ने देखा कि किसी के माथे पर नहीं लिखा कि वह शूद्र है या ब्राह्मण है। उस सर्वहितैषी संयासी ने देखा कि भगवान का बनाया हुआ सूर्य अपना प्रकाश तथाकथित शूद्र के घर से नहीं हटाता, चांद अपनी चाँदनी की शीतलता से उसे वंचित नहीं करता। धरती माता भी उसके साथ दूसरा व्यवहार नहीं करती। जल और वायु भी उसको वैसा ही सुख देते हैं जैसे कि ब्राह्मण को। उसने देखा कि भगवान् ने इनको कान, नेत्र, तथा वाणी भी वैसी ही दी है जैसी ब्राह्मण आदिक को। अतः उसको यह अन्याय जंचा। फिर उसे वेद ने स्वयं बताया कि वह 'विश्व कल्याणी'—सब मनुष्यों की कल्याणकारिणी वाणी है। यजुर्वेद २६।२ में उसे मिला कि 'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। भगवान् कहते हैं कि जैसे मैं इस कल्याणी वेदवाणी को सब जनों के लिये उपदेश करता हूं—तब उसने ललकार कर कहा वेद मनुष्यमात्र के लिये हैं। इसके पक्ष में उन्होंने अनेक युक्तियां तथा प्रमाण दिए। हम यहां केवल एक युक्ति देना चाहते हैं। देखिए, हमारे शरीर में देखने का कार्य आंख के द्वारा होता है। किन्तु आंख बाहर के प्रकाश के बिना कार्य नहीं कर सकती। भगवान् ने इसकी सहायता के लिए सूर्य बनाया है। सूर्य या सूर्य का प्रतिनिधि न हो तो आंख नहीं देख सकती। जैसा स्पष्ट सूर्य के प्रकाश में दीखता है, वैसा रात्रि को चान्द की चान्दनी या बिजली की रोशनी में भी में दिखाई नहीं देता। अब सोचिये, कृपानिधान भगवान ने बुद्धिरूपी आंख तो मनुष्य को दी, तो ज्ञानरूपी सूर्य कैसे न देता। जैसे सूर्य सबकी आँखों का सहायक है, वैसे प्रभु का दिया हुआ ज्ञानरूपी सूर्य भी सबकी बुद्धियों का सहायक होना चाहिए। अतः स्वामीजी ने मानो हिमालय पर्वत पर चढ़कर पुकारा कि सुनो, सब संसार के लोगो! वेद तुम सबके लिए है। आओ, तुम सब वेदामृत का पान करो। स्वामी ने केवल पुकारने पर ही बस न की, उसने सबको वेदामृत पान कराने का प्रबन्ध भी कर दिया। उसने कृपा करके वेदों का देशभाषा में भाष्य कर दिया।

स्वामी जी का इस विषय में घोर विरोध हुआ। किन्तु वे ब्राह्मण जो गौ ब्राह्मणों के पुजारी शूद्रों को वेद पढ़ने से रोकते थे, वे गोभक्षी, ब्राह्मण द्वेषी, वेदविरोधी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

योरुपियनों को, टका लेकर वेद पढ़ाते थे, अतः उनकी यह दारंगी नीति न चल सकी, और भारत के साथ समस्त जगत् के निष्पक्ष बुद्धिमानों ने स्वामी दयानन्द का अभिनन्दन किया, तथा उन्हें धन्यवाद दिया।

(२) वेद के साथ वैदिक धर्म भी सबके लिए।

दूसरी अनोखी बात स्वामी जी ने यह चलाई कि वैदिक धर्म भी सबके लिए है। उन्होंने देखा, शरीर में डाला भी जाता है और सृष्टि नियम के अनुसार अनुपयोगी अंश इससे निकल भी जाता है। उन्होंने देखा कि जिस तालाब में कहीं बाहर से जल नहीं आता, उसके जल में सड़ांद उत्पन्न होकर पहले पास पड़ोस के प्राणियों के दुःख का कारण बनता है और फिर स्वयं वह जल सूख जाता है। समुद्र के जल को सूर्य सुखाता रहता है किन्तु पर्वतों से आती हुई नदियां उसके जल को न्यून नहीं होने देतीं। पर्वतों की वर्फ पिघल-पिघल कर नदियों के प्रवाह के रूप में समुद्र में जा रही है, उधर पर्वतों से उठा जल पर्वतों पर वर्फ के रूप में गिरकर कमी को पूरा कर रहा है। इस नैसर्गिक नियम के विरुद्ध उन्होंने आर्य जाति का चलन देखा। इससे निकास ही निकास हो रहा था, इसमें प्रवेश कहीं से भी नहीं हो रहा था। दार्शनिकों की जाति के इस विचित्र व्यवहार से वे अवाक् रह गये। उन्होंने इतिहास के आधार पर बताया कि एक समय ऐसा था जब सारे संसार में वैदिक धर्म की पताका फहरा रही थी। हमारे आलस्य प्रमाद के कारण वेद विद्या के लोप होने से ये मतमतान्तर उसी प्रकार उत्पन्न हुए जिस प्रकार सूर्यास्त होने पर नाना प्रकार के दीपक जलाए जाते हैं। उन्होंने युक्तियों से सिद्ध कर दिखाया कि वेद सृष्टि के आदि में आए और वे सूर्यसमान हैं। जैसे सूर्य सबके लिये हैं, वैसे वेद भी सबके लिए हैं। समय-समय पर वैदिक लोग उन धर्मच्युत अवैदिकों को अपने में पुनः मिलाते रहे। शकों, हूणों तथा नाना विदेशी लोगों को समाज में मिलाकर अपना अंग बना लिया। इस वास्ते स्वामी ने शुद्धि का चक्कर चलाया इससे उनको अपना तथा परायों दोनों के विरोध का सामना करना पड़ा। अपनों ने तो अज्ञान वंश विरोध किया, वे यह न समझे कि यदि यही गतिविधि रही तो एक दिन आयेगा जबकि जाति का नाम ही रह जाएगा, निशान मिट जाएगा। विरोधी इस वास्ते सटपटाये कि उन्हें अपनी गणना नष्ट होती दिखाई देती थी। उन विधर्मियों ने गिन रखा था कि अमुक समय तक एक भी व्यक्ति संसार में ऐसा न रहेगा जो यह कह सकेगा कि मैं वैदिकधर्मी हूं। स्वामी जी के प्रचार ने उनके मन के कल्पना दुर्ग पर प्रबल प्रहार करके उसे राख कर दिया। स्वामी जी ने कहा जो वैदिक सिद्धान्तों को स्वीकार करे, वह वैदिक धर्मी। जैसे कबीर जी ने किसी समय कहा था—जात पात पूछे न कोए। हरि को भजे सो हरि का होए। ऐसे ही अपने समय में दयानन्द ने मानो कहा—'जाति-देश पूछो न कोए। वेद को माने सो वेद का होए।' स्वामी से पहले वैदिकधर्मी पर यदि किसी विधर्मी के जल का छींटा पड़ जाता था, तो वह जातिच्युत, धर्मबहिष्कृत कर दिया जाता था। इस अज्ञानजन्य अनाचार के कारण सैकड़ों हजारों जन आर्य जाति के भवन से निकल कर दूसरों की झोंपड़ियों को जगमगाने लगे। स्वामी ने न केवल उनकी वापसी की व्यवस्था की, अपितु मनुष्य मात्र को वैदिक धर्म में आने का खुला निमन्त्रण दिया। स्वामी की इस बात ने वहुत तहलका मचाया किन्तु अब तो यह बात धीरे-धीरे स्वीकार की जा रही है।

देश की नई परिस्थितियों के कारण लाखों मनुष्य इस प्रतीक्षा में हैं कि शिखा तथा यज्ञोपवीत से उन्हें सजा कर वेदामृत पिलाया जाये। देखें, कौन प्यासों की प्यास बुझाने का पुण्य कमाता है?

आर्यधर्म की मर्यादा एवं आर्य इतिहास के ज्ञान से विहीन कुछ एक महानुभावों ने स्वामी दयानन्द के इस उपकार या सुधार के विरुद्ध यह कहने का दुस्साहस किया कि अन्य लोगों के लिए वैदिक धर्म के द्वार खोल कर स्वामी दयानन्द ने हिन्दू धर्म को संकुचित कर दिया है। यदि अपने घर का द्वार सबके लिये खोल देना संकोच और अनुदारता का परिचायक है, तो अवश्य स्वामी दयानन्द अपराधी हैं और यह ऐसा अपराध है कि इसे दोहराने वाले लाखों करोड़ों हों और उनकी शक्ति कोटि गुणा अधिक हो। यदि स्वामी दयानन्द की बात मान ली गई होती तो पाकिस्तान कभी न वन सकता। अस्तु! जो हो गया, उस पर रोने धोने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि स्वामी दयानन्द की इस वात का अधिकाधिक प्रचार किया जाए।

(३) वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।

स्वामी ने तीसरी बात तो बहुत ही अनोखी कही। स्वामी से पूर्व पण्डित या मूर्खों सभी में यह प्रसिद्ध था कि वेद का अर्थ वर्थ कुछ नहीं है। सांप बिच्छू के कल्पित गपोड़ों तथा कथित मन्त्रों के समान वेद मन्त्र भी विशेष-विशेष समयों पर पढ़ने तथा विशेष-विशेष देवताओं को रिझाने के लिए हैं। जिस तरह सांप बिच्छू के मन्त्र हर कोई नहीं जानता, इसी प्रकार वेद भी एक विशेष दल की वपौती हो गये थे। और यतः उनसे पूछाताछ करने वाला कोई नहीं रहा था, इसलिए वे स्वयं भी इसे भूल चुके थे। सहस्रों वर्षों के पश्चात् स्वामी दयानन्द एक ऐसा महात्मा आया जिसने वताया कि अरे ये तो विद्या की खान हैं। वेदों में सभी विद्याएं हैं। आश्चर्य की बात है कि जिन लोगों ने इस विषय में स्वामी का घोर विरोध किया, उन लोगों ने आगे चल कर स्वामी के पद चिह्नों पर चलना आरम्भ कर दिया। इसमें देशी विदेशी सभी सम्मिलित हैं। विदेशियों ने तो इसे गड़रियों की चिल्लाहट बताया और अन्त में ज्ञान की खान माना। स्वामी दयानन्द को यह सूझ वेद नाम से हुई। वेद का अर्थ ज्ञान है। फिर कपिल कणाद, गौतम, पतंजलि जैमिनि, व्यास, मनु, भारद्वाज आदि ऋषि अपने ग्रन्थों का मूल वेद को बताते हैं। भला दर्शनों, कानून तथा शिल्प शास्त्र आदि का मूल अर्थरहित या गड़रियों की बिलबिलाहट कैसे हो सकता है। यह तो कहने वालों का प्रलाप और बिलबिलाहट थी। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में स्वामी ने वेद की कुछ एक विद्याएं दिखलाई भी हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(४) वेद ब्रह्मा पर नहीं, चार ऋषियों पर प्रकट हुए।

स्वामी से पहले यह माना जाता था कि वेद सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा के चार मुखों से प्रकट हुए। स्वामी ने ब्राह्मण ग्रन्थों, मनुस्मृति आदि के आधार पर बतलाया कि अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा नामक चार ऋषियों पर वेद प्रकट हुए, और ब्रह्मा ने इन चारों से वेद पढ़े, इस वास्ते वह चतुर्मुख कहलाया। ब्रह्मा के चार मुख होना असम्भव बात है। चारों वेदों को मुखाग्र—कण्ठस्थ करने से वह चतुर्मुख कहलाया। किसी भी ब्राह्मण ग्रन्थ में नहीं लिखा कि वेद चतुर्मुख ब्रह्मा पर प्रकट हुए, प्रत्युत यह तो लिखा है कि ब्रह्मा ने अग्नि, वायु आदि से वेद पढ़े। धीरे-धीरे वेदाभ्यासी विद्वान् स्वामी की इस बात को भी मानने लग गये हैं।

स्वामी दयानन्द की चार अनोखी बातें यहाँ प्रस्तुत की गई हैं। इन चारों का आपस में अटूट सम्बन्ध है। धर्म की यह आधारशिला हैं। स्वामी की कृपा का फल है कि आज स्त्री तथा शूद्र सहस्रों की संख्या में वेद पढ़ते दिखाई देते हैं। उनकी कृपा का परिणाम है कि आज आर्य धर्म को कोई कच्चा धागा कहने का साहस नहीं कर सकता। यह अब सुदृढ़ लोह की शृंखला समझा जाता है। बचे खुचे भारत की सुदृढ़ता एवं रक्षा के लिए स्वामी दयानन्द के विचारों से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

यहां एक शंका को भी लगे हाथों समाधान कर देना आवश्यक तथा उपयोगी प्रतीत होता है। स्वामी दयानन्द से पूर्व, भारत में, मध्यकाल में जो बड़े-बड़े मतस्थापक धर्माचार्य हुए है, उन सबने उपनिषदों, गीता तथा वेदान्त दर्शन को अपने सिद्धान्तों का आधार बनाया है किन्तु इसके विपरीत स्वामी दयानन्द ने मूल वेद संहिता को अपने विचारों का आधार बनाया है। इसमें क्या हेतु है? इसका समाधान यह है कि वेदान्त दर्शन में मान्त्रविणकमेव च गीयते इत्यादि अनेक सूत्रों द्वारा वेदों की ओर संकेत है, तथा गीता में भी अनेक स्थलों में वेद की ओर निर्देश है। उपनिषदों में अनेक स्थानों पर वेद की चर्चा है, सारे स्थलों का निर्देश तो यहाँ कर सकना असम्भव है। हां एकाध का निर्देश करना अनुपयुक्त नहीं है, यथा—(१) सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति (कठो०) (२) द्वे विद्ये वे दितव्ये परा चैवापरा च, तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदमथर्ववेदम् (छान्दोग्य) (४) तस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो थर्ववेदः (अर्थात्) (१) सब वेद जिस ओम् पद का बार-बार वर्णन करते हैं। (२) दो विद्यायें जाननी परा तथा अपरा। उनमें से अपरा वह है जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। (३) नारद ने सनत्कुमार जी से निवेदन किया है कि भगवन् मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद पढ़े हैं। (४) ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद हैं ये उस भगवान् के निःश्वास समान हैं।

इन सारे वचनों से यह सिद्ध होता है कि वेदान्त की प्रस्थानत्रयी उपनिषत् गीता तथा वेदांतदर्शन अपना मूल तथा प्रमाण वेद को मानते हैं। यह जानकर स्वामी ने यही उचित समझा कि मूल स्रोत तक पहुंचा जाय।

वहाँ पहुंचने पर ज्ञात हुआ कि कणादमुनि जिसको धर्म समझते हैं, उसका पूर्ण प्रतिपादन मूल वेद में ही हुआ है। कणाद जी कहते हैं कि यतोऽभ्युदय निश्रेयससिद्धिः स धर्मः जिससे लोकोन्नति और मोक्ष की सिद्धि हो वह धर्म है। प्रस्थानत्रयी में तो मोक्ष के उपायों का वर्णन है। उन तीन ग्रन्थों में लौकिक उन्नति की चर्चा नहीं है। धार्मिक साहित्य में वेद ही एक ग्रन्थ है जिसमें धर्म लोक परलोक उन्नति के उपाय का सर्वांगीण निरूपण है और फिर वे कणाद मुनि तथा अन्य ऋषि मुनि उसे ईश्वरोक्त भी मानते हैं। इस वास्ते आस्तिक प्रचारक दयानन्द स्वामी ने वेदों का स्वाध्याय किया। उन्हें निश्चय हुआ कि वेद ही ऐसा ग्रन्थ है जिससे मनुष्य को सर्वविध उन्नति के साधन मिल सकते हैं, अतः उन्होंने 'वेदों' का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना परम धर्म ठहराया।

स्वामी दयानन्द की यह अनोखी विशेषता है कि उन्होंने अपने नाम से कोई मत न चलाकर ब्रह्मा से जैमिनि पर्यन्त ऋषिमुनियों की बातों का प्रचार किया। कदाचित् सहस्रों वर्षों पश्चात् ऐसा आचार्य संसार ने देखा जो अपने को वेद-धर्म का उपदेशक मानने में गौरव मानता रहा है। इस निरभिमानता ने उनका मान बहुत बढ़ा दिया है। जितने बड़े-बड़े आचार्य या मतप्रवर्तक आए, सभी ने अपना नाम भक्तों से जपवाया। स्वामी दयानन्द ने कहा—प्रभु का नाम जपना चाहिए और प्रभु की भक्ति करना सबका अधिकार और कर्तव्य है, ठीक बात भी यही है।

हमारा विचार है कि ज्यों ज्यों ज्ञान विज्ञान तथा वेद-शास्त्र का प्रचार होगा, स्वामी की बातों का बढ़ चढ़कर प्रसार तथा विस्तार होगा। आश्चर्य की बात यह है कि जिन बातों को दयानन्द ने संसार तथा इस देश के लिए कल्याणकारी समझा, उनको अब सभी सुधारक एवं नेता स्वीकार करके उनका प्रचार कर रहे हैं।

जो सज्जन स्वामी जी के विचार विस्तार से जानना चाहें वे उनका लिखा सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें। उससे उनको एक अनोखा प्रकाश मिलेगा। बहुत से विषयों में नये विचार मिलेंगे। कई विषयों के भ्रम मिटेंगे। सच्चे धर्म और खोटे धर्म की पहचान करने का विधान मिलेगा। सांसारिक धर्म का अनुष्ठान करते हुए मोक्ष साधन करने का ज्ञान जो चाहें, वह अवश्य इस ग्रन्थ को पढ़ें। महामना मदनमोहन मालवीय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि महानेताओं ने स्वामी के इस ग्रन्थ से स्फूर्ति प्राप्त की थी, ऐसा वे स्वीकार करते थे।

२२५) सैंकड़ा का
सत्यार्थ प्रकाश बांटें
सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी
उत्साह से मनाएं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१

जनरल जोरावरसिंह

—सय्याह सुनामी

इस अंक से हम यह उपन्यास धारावाहिक प्रकाशित करना आरम्भ कर रहे हैं—आशा है पाठक पसन्द करेंगे ।

रघुनाथ मन्दिर के प्रांगण में अकस्मात् एक कोलाहल गूंज उठा। ऐसा लगता था कि किसी नास्तिक ने कोई देव प्रतिमा तोड़ दी है अथवा कोई धर्म-ग्रंथ उठाकर बाहर फेंक दिया है।

थोड़ी ही दूरी पर एक सुन्दर युवक न जाने कब से एक बहेड़े के वृक्ष के नीचे बैठा क्या सोच रहा था कि इस कोलाहल से चौंक उठा और वास्तविकता का पता लगाने के लिए मन्दिर की ओर दौड़ पड़ा।

'इसको कहते हैं घोर कलयुग ! रात के थके-मांदे को शरण दी। खाने को भोजन और सोने के लिए चारपाई और बिस्तर दिये, प्रातःकाल सोकर उठने पर धन्यवाद के स्थान पर जली-कटी सुनाने लग गया।'

'ऐसे मुँह-फट की खोपड़ी तोड़ देनी चाहिए। एक पाखंडी का सिर कुचल देना चाहिए, जो ज्ञान के नाम पर झूठ गढ़ता हो।'

'और झूठ गढ़कर जूतियों समेत इस तरह सिर चढ़ता हो :'

दो युवक पुजारी किसी को भीतर से धकेलते, थप्पड़ घूंसे, लातें मारते बाहर प्रांगण में ले आए। तदुपरान्त वृद्ध पुजारी भी उसी व्यक्ति को बुरा-भला कहता हुआ बाहर निकला।

'ईश्वर तुम लोगों को सन्मार्ग दिखाए। क्यों ऐसी बातें करते हो, जो किसी मन्दिर के पुजारी को शोभा नहीं देतीं।' वह व्यक्ति बोला, जिसे वे धक्के देकर बाहर घसीट लाए थे और जिसे वृद्ध पुजारी अभी भी बुरा-भला कह रहा था।

'और तुम···अपने लिए ईश्वर से प्रार्थना क्यों नहीं करते कि वह तुम्हें इतनी सद्बुद्धि प्रदान करे कि तुम इस प्रकार ढीठ बन कर, जिससे कोई लाभ उठाओ, उसी का अपमान न करो।'

वह व्यक्ति जिसे पुजारी एक अपराधी ठहरा रहे थे, चालीस पैंतालीस वर्ष का लम्बे डील-डौल और सुगठित शरीर वाला था। वह चाहता तो इन तीनों पुजारियों की जिन्होंने अभी उसके साथ दुर्व्यवहार किया था अच्छी तरह मरम्मत कर सकता था। उस व्यक्ति का रंग निखरा हुआ, मुखमंडल गम्भीर एवं आध्यात्मिकता तथा विद्वत्ता के ओज से दमक रहा था। मन्दिर के पुजारियों द्वारा किये गये अनुचित व्यवहार से उसके मुख पर थोड़ी-सी घबराहट अवश्य थी। परन्तु किसी प्रकार का क्रोध, खेद अथवा भय दिखाई नहीं देता था। वह कोई उदारचित्त ब्राह्मण प्रतीत होता था।

वह बोला, 'जहाँ तक मैं समझता हूँ, मैंने तुम्हें ऐसी कोई बात नहीं कही, जिसे किसी के अपमान का रंग दिया जा सकता हो। फिर भी मेरे शब्दों से यदि तुम्हारे मन को कोई ठेस लगी है तो मैं उन्हें वापस ले लेता हूँ और क्षमा चाहता हूँ, क्योंकि मैं जान गया हूँ कि मैं जिन उच्च विचारों को व्यक्त कर रहा था वे साधारण सांसारिक ब्राह्मणों के मानसिक स्तर से बहुत ऊँचे हैं।'

'लो तुमने तो हमारा पुनः अपमान कर दिया। क्या तुम हमें मूर्ख ही समझते हो और अपने आपको व्यास और पतंजलि का क्या नाम···वह समझता है ? लाना रे, तनिक भीतर से मेरी यष्टिका उठा लाना, जिससे इसका थोड़ा-सा बड़प्पन का भूत उतार दूँ।'

एक पुजारी लपक कर भीतर से एक बांस की लाठी उठा लाया। सम्भव था कि वह उससे उस व्यक्ति के सिर पर एक प्रहार करता किन्तु वृक्ष के नीचे से उठकर आए युवक ने दौड़कर उनका हाथ पकड़ लिया।

'महराज ! मन्दिर में इस प्रकार की सिर फुटव्वल शोभा नहीं देती, क्रोध को थूक दीजिए। क्या बात हुई थी ?'

'···बात।'

'तुम कौन होते हो, हमारा हाथ पकड़ने वाले।' वृद्ध पुजारी गरज उठा।

'मैं आपके सेवकों में से एक हूँ !' 'आइए महाराज' वह उस व्यक्ति का हाथ पकड़कर उसे झगड़े के स्थल से एक ओर ले जाता हुआ बोला, 'जहाँ तकरार होता हो, वहाँ खड़े रहने से कोई लाभ नहीं। कई बार तर्क-वितर्क में उलझने की अपेक्षा एक ओर हट जाना ही श्रेयस्कर होता है।'

'कौन हो तुम ?' इस व्यक्ति ने अब उस युवक को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ध्यान से देखते हुए पूछा ।

'राजपूत महाराज !'

'तुम्हारा नाम !'

'जोरावर ! जोरावर सिंह !'

'हूं !'

'पता नहीं, प्रातःकाल से अब तक आपने जलपान भी किया है अथवा नहीं । यदि नहीं किया है तो आइए आप मेरे घर चलिए ।'

'नहीं युवक ! मैंने अभी बहुत दूर जाना है । अनेक दिनों की यात्रा के बाद मैं कल रात ही यहां पहुंचा था । यात्रा की थकान अधिक थी । इसलिए इन पुजारियों को अतिथि सेवा का कष्ट दिया था । अब मैं और अधिक किसी के पास ठहरना नहीं चाहता ?'

'तो मैं आपको थोड़ा-सा गर्म दूध ला देता हूं । थोड़ी देर इसी वृक्ष के नीचे विश्राम कीजिए । मैं अभी दौड़कर दूध ले आता हूं । मेरा घर कुछ अधिक दूरी पर नहीं है ।'

'नहीं भाई, तुम्हारा धन्यवाद ! अब तो मुझे जाने की आज्ञा दे ही दो, यही अच्छा होगा । थोड़ी-बहुत तो तुमने मेरी सेवा-सुश्रूषा की ही है । इसलिए यदि जीवन में कभी अवसर मिला तो मैं इस सहानुभूति का प्रतिदान चुकाने का संकल्प करता हूं । अभी तो मैं तुमसे यही कहता हूं कि इन पूरब और उत्तर के पहाड़ों में, जितना भी हो सके घूमो और अधिकाधिक जानकारी प्राप्त कर लो । पता नहीं इस जानकारी से तुम्हें कब लाभ मिल जाए । अच्छा जय आर्यावर्त ।'

इतना कहकर वह व्यक्ति जोरावरसिंह को असमंजस और विस्मय से घिरा छोड़कर जोजीला घाटी को जाने वाले मार्ग पर चल पड़ा । अपने आप में खोया-खोया-सा जोरावरसिंह उसे देखता रहा जब तक कि वह उसकी दृष्टि से ओझल न हो गया ।

'कौन रहस्यमय व्यक्ति था यह ? मुझे आस-पास के पर्वतों की जानकारी प्राप्त करने के लिए किसलिए कह गया है ? न बन्दगी, न राम, राम । उसने मुझसे जय आर्यावर्त क्यों कहा ? कहां का रहने वाला होगा यह ।'

जोरावरसिंह कुछ समय तक वहीं खड़ा-खड़ा उस व्यक्ति के बारे में सोचता रहा, किन्तु कोई निर्णय न कर सका ।

'मन्दिर के पुजारियों का उसने ऐसा क्या अपमान किया था ? जिससे भड़ककर वे उसका सिर फोड़ने पर उतारू हो गये । आदमी तो भला प्रतीत होता था, जिसको किसी मान-अपमान से कुछ लेना देना न हो । फिर बात क्या हुई है आखिर ।'

उसके मन में इस व्यक्ति के सम्बन्ध में जानने की जिज्ञासा प्रबल हो उठी । परन्तु बताता भी कौन ! उन पुजारियों से ही कुछ जानकारी मिल सकती थी । किन्तु भला उनसे जाकर पूछता भी कौन ? उसे भय लगता था कि वे अब कहीं लट्ठ लेकर उसी के पीछे न पड़ जाएं । क्योंकि जब उसने उस व्यक्ति को उनके घेरे से निकाला था, तभी वे उसके हस्तक्षेप पर बुरा मान रहे थे । अब यदि उनसे कुछ पूछा भी तो वे लाठी लेकर उसी को मारने के लिए दौड़ेंगे । जब अपने सरीखे ब्राह्मण विद्वान् पर हाथ उठाने से नहीं चूके तो मैं एक राजपूत युवक भला किस गिनती में हूं ।' वह 'लठ्ठबाजी' से तो नहीं डरता था परन्तु उसे ब्राह्मणों से झगड़ा अच्छा नहीं लगता था वह तो राजपूत था, जो ब्राह्मण की सेवा और रक्षा को अपने धर्म का अंग मानता था ।

परन्तु पुजारियों और इस व्यक्ति के झगड़े की वास्तविकता जानने की जिज्ञासा एक अग्निशिखा के तुल्य उसके हृदय में दमक उठी थी । काफी समय तक चिन्तन मनन करने पर भी उसे कोई उपाय न सूझा । परन्तु इसके साथ ही उसकी जिज्ञासा इतनी बढ़ गई कि उसने मन्दिर में जाने का निश्चय कर लिया । उसने सोचा कि वह वहां जाकर वृद्ध पुजारी के चरण छूकर उसका क्रोध शान्त करेगा और उसकी हां में हां मिलाएगा । जब इस चापलूसी से वह पिघल उठेगा तो वह सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछेगा । यदि क्रोध से भड़के होने के कारण वह उसे दो कड़वे वचन कह देंगे तो भी उन्हें सहन कर लेगा । पुजारी ने दो झिड़कियां भी दीं तो वह चुपचाप सहन कर लेगा । उसकी नरमी और विनम्रता के समक्ष पुजारी का क्रोध अधिक समय तक नहीं ठहर सकेगा । उनका अपमान यदि किया था तो इस व्यक्ति ने किया था । उसने तो उनका कुछ नहीं बिगाड़ा था । केवल झगड़े में बीच-बचाव किया था । यदि इतने पर भी वे उसे मारने दौड़ तो वह अपने आपको उनसे छुड़ाकर भाग आएगा । उसे अपने भुजबल पर भरोसा था । तीन पुजारी चाहे वे कितने ही क्रुद्ध क्यों न हों एक राजपूत युवक को परास्त तो कदापि नहीं कर सकते थे ।

वह अपने स्थान से उठा और मन्दिर की ओर चल पड़ा । वृद्ध पुजारी कहीं जाने के लिए मन्दिर के द्वार से बाहर निकल रहा था । जोरावरसिंह ने झट आगे बढ़कर उसके चरण छू लिए ।

'चिरंजीव रहो ! कहां गया वह पाखंडी ?'

'बाबा मैंने उसे धमका दिया कि तुरन्त यहां से चले जाओ । नहीं तो हमारे पुजारी बाबा के श्रद्धालु तुम्हारी हड्डी पसली तोड़ डालेंगे । तुमने उनसे अनुचित बात कही ही क्यों ? उनका मन ही क्यों दुखाया ? और बाबा वह सिरपर पांव रखकर भाग निकला ।' जोरावरसिंह ने बात बनाई ।

'भाग गया धूर्त ।'

पीछे से पुजारी का वही शिष्य निकला जिसकी लाठी को उस व्यक्ति पर पड़ने से जोरावरसिंह ने रोक लिया था । इस समय वह खाली हाथ था । वह बोल उठा—

'क्यों रे जोरावर ! उस व्यक्ति को बचाने के लिए भला तू मुझसे क्यों उलझने लगा था ? मेरा हाथ क्यों पकड़ लिया था तूने ?

'लो महाराज ! मैं भला आपसे कब उलझा था ?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मैंने तो केवल बीचबचाव ही किया था। यदि आपकी लाठी का प्रबल-प्रहार उसके सिर पर पड़ जाता तो उसके प्राण-पखेरू ही उड़ जाते और सरकारी सिपाही हत्या के सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने चढ़ आते।'

'एक बार तो मैं उसका सिर फोड़ ही देता। फिर जो भी होता देखा जाता।' पुजारी के शिष्य ने अपनी वीरता जताने के लिए कहा। परन्तु अपने में उसने यह भी सोचा कि यदि उसकी लाठी के प्रहार से वह व्यक्ति वास्तव में ही दम तोड़ जाता तो क्या होता? थानेवाले उसे पकड़ ले जाते। अभियोग चलता, अपराध प्रमाणित होने पर उसे प्राणदंड मिलता। एक सिहरन-सी उसके शरीर में हो उठी। उसे शान्ति मिली कि अच्छा ही हुआ कि जोरावरसिंह ने उसे रोक दिया और वह ऐसी भूल से बच गया कि जिसके कारण क्रोध की पाराकाष्ठावश उससे एक जघन्य अपराध हो जाता।

'चलो छोड़ो!' वृद्ध पुजारी बोला और वे दोनों एक ओर को चले गए। जोरावरसिंह ने जो कुछ पूछना था वह न पूछ पाया।

मन्दिर के प्रांगण में तीन वृक्ष खड़े थे। दो ऐसे वृक्ष जो बहुत ही ऊँचाई पर उगते हैं और एक पीपल का जो निचले मैदानों में होता है। एक-दो पीढ़ियां पहले किसी पुजारी ने उन्हें यहां लाकर लगाया होगा। एक कोने में अनार के पेड़ों का एक झुण्ड भी था, जिनके घने हरे पत्तों में एक विचित्र-सी चमक थी। इनमें से एक-आध अनारकली भी झांकती हुई दिखाई दे रही थी। इसी झुण्ड के नीचे पुजारी का दूसरा शिष्य कोई पुस्तक हाथ में लिए बैठा था। परन्तु वह उसे पढ़ नहीं रहा था। अपितु वह बन्द ही एक छोटे से सिकुड़े-सिमटे अंगोछे पर टिकी थी। युवा पुजारी किसी विचार में डूबा, आकाश में किसी वस्तु की ओर ताक रहा था। जिधर ऊँचे-ऊँचे सनोवर और चीड़ के वृक्षों के सघन वन थे, ऊँचे शैल शिखर थे और उससे भी परे थी हिममंडित गगन चुम्बी पर्वत-मालाएं।

जोरावरसिंह उस व्यक्ति को पहले से जानता था। उसका नाम छबीला था। किन्तु गुरु ने उसे बदलकर ज्ञानसागर रख दिया था।

'नमस्ते पंडित जी।' जोरावरसिंह ने कहा। जिस पर वह युवक पुजारी चौंककर उसकी ओर देखने लगा।

'आओ जोरावर!'

जोरावरसिंह उसके पास पहुंचा। उसने पूछा किसी गहन चिन्ता में डूबे थे क्या?'

'हाँ' गुरुदेव से तन्त्र शास्त्र सीखा करता था और इसके गूढ़ तत्त्वों को समझने और अभ्यास में लाने में मगन था कि उस ब्राह्मण ने जिसकी गुरुदेव से भेंट हुई थी कुछ अनोखे विचार प्रकट करके मन की शान्ति और सन्तोष चौपट कर डाले और यह सोचने पर बाध्य कर दिया कि क्या वह जीवन पद्धति जो मैंने और गुरुदेव ने अपना रखी है ठीक है अथवा वह पद्धति जो उसने बताई है ठीक है।'

ज्ञानसागर के उत्तर ने जोरावरसिंह की वास्तविकता को जानने की जिज्ञासा को और भी अधिक बढ़ा दिया था, किन्तु इस पर भी उसने अपने हाथ से संयम की डोर को न छोड़ा था। वह पुजारी के समीप ही घास पर बैठ गया और पूछा, 'क्या कहता था वह?'

'वह कहता था, परन्तु ठहरो! मैं उनके साथ हुई वार्ता प्रारम्भ से ही बताए देता हूँ। कल रात्रि के पहले पहर में वह मन्दिर में आकर ठहरा था। हमारे द्वारा परसा भोजन ग्रहण कर और बिस्तर पर लेट कर वह कम्बल ओढ़कर सोया पड़ा रहा। परन्तु ऐसा अनुमान है कि वह सो नहीं पाया था। गुरुदेव और हम उनके दोनों शिष्य पृथक्-पृथक् बैठकर धीमे स्वर में तान्त्रिक मन्त्रों का जाप करते रहे। एक पहर रात्रि शेष थी जब हमने वह जाप मन्त्र छोड़ा और पड़कर सो गए। प्रातः हमारी आँख खुली तो वह शौच, स्नान और पूजा आदि कर निवृत्त हो चुका था। कहने लगा 'तान्त्रिक हो क्या?

गुरुदेव बोले! 'यह गंडा तावीज, टोना, टोटका! इससे अस्वस्थ बालकों की चिकित्सा हो जाती है। सर्प, बिच्छू के काटे को आराम आ जाता है। पति-पत्नी में मनमुटाव हो जाए तो इससे उनमें पुनः सामंजस्य स्थापित हो जाता है। और यह मोन उच्चाटन! कई श्रेष्ठ तान्त्रिक अपने मन्त्र बल के द्वारा प्रदेश में फैले रोगों को भी भगा देते हैं और सूखा पड़ने पर वर्षा भी करा देते हैं। हम ब्राह्मण जो ठहरे। लोग तन और मन के अनेक रोगों को लेकर हमारे पास आते हैं। हम अपनी विद्या द्वारा जो कुछ बन पड़ता है, करके उनकी मनःकामना पूर्ण करने का प्रयास करते हैं। इसके बदले में वे हमें अन्न दूध, घी, मधु, वस्त्र, बर्तन आदि दे जाते हैं। इससे लोगों का भी भला होता है और हमारी भी आजीविका चल जाती है। परमार्थ भी होता है और स्वार्थ भी।'

'बस।'

'यह शब्द उस व्यक्ति ने कुछ ऐसी घृणा और उपेक्षा-मय ढंग से कहा कि हम उसकी कटुता को अनुभव किए बिना न रह सके।

'और क्या?' गुरुदेव प्रश्न रूप बने उसके मुख की ओर देखते रहे। हम दोनों शिष्यों की भी यही अवस्था थी। हमारे मन में भी कटुता भर गई थी।

'मैं पूछता हूँ!' वह व्यक्ति कहने लगा, 'क्या तंत्र, गंडा, तावीज करना और किसी स्त्री या पुरुष के सिर पर आए सच्चे-झूठे प्रेत की छाया को उतार देना, यह आप सरीखे विद्वान ब्राह्मण का एकमात्र कार्य रह गया है? लोगों की ओर से आया आटा, अन्न, दूध, घी खा-खाकर पेट पर चैन से हाथ फेरने के अतिरिक्त और कोई बात ब्राह्मण के महान् कर्तव्य और दायित्व में नहीं रह गई है क्या?'

गुरुदेव को व हमें भी उस व्यक्ति की बात बड़ी कड़वी प्रतीत हुई। तो भी गुरुदेव ने पूछा 'क्या तात्पर्य है आपके इस कथन का, थोड़ा स्पष्ट शब्दों में बताएं। मैं इसे समझ नहीं पाया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'मेरा तात्पर्य यह है कि क्या धर्म-प्रचार का कार्य अब ब्राह्मणों का कर्त्तव्य नहीं रह गया ?'

'है ! क्यों नहीं रह गया। हम समय-समय पर श्रीमद्भागवत की कथा भी करते हैं और विवाह के अवसर पर संस्कारविधि, ग्रह पूजन और यज्ञ हवन भी करा देते हैं।'

'यह अलबत्ता धर्म प्रचार का एक अंग ही है। किन्तु धर्म प्रचार का महान् और विशाल रूप नहीं है। पूजा, पाठ, विवाह-संस्कार आदि कराने से तो ब्राह्मण का सीमित रूप ही व्यक्त होता है। जैसे किसी ने उसके पांव और भुजाएं काट डाली हों और वह एक स्थान पर ही पड़े रहने को बाध्य हो गया हो। जैसे गंगाजल को किसी ने तंग मुंह के किसी बर्तन में बन्द कर रखा हो। जैसे पर्वतों और वनखण्डों में स्वतंत्र रूप से विचरण करने वाली वायु का झोंका किसी तंग और अंधेरी कोठरी में बन्द होकर रह गया हो।'

'तो ब्राह्मण का कर्तव्य क्या है ?'

'इसका तो ब्राह्मण को स्वत: ही पता होना चाहिए। वह हिन्दू जाति का शिरोमणि है। उसे उसका कर्त्तव्य कौन बताए ? मन में धर्म और राष्ट्रप्रेम की भावना जगाइए। देश के प्रत्येक प्रदेश से सम्बन्ध स्थापित कीजिए। किसी केन्द्रीय शक्ति का सहारा लेकर स्वदेश में धर्म भावना को प्रबल करने में जुट जाइए। अधर्म का नाश कीजिए। पुन: उन विदेशों में इस धर्म की कीर्ति पताका फहराइए, जहाँ कभी हिन्दुओं का शासन था और हिन्दू संस्कृति का जयघोष निनादित होता था। ये देश लद्दाख, तिब्बत, मंगोलिया, मध्य एशिया, काबुल, कंधार (गांधार) केस्पियन सागरवर्ती द्वीप आदि कभी वृहत्तर आर्यावर्त के ही अविच्छिन्न अंग थे। कोई दो शताब्दी पूर्व तो कोई दस शताब्दी पूर्व।'

'लद्दाख और तिब्बत वालों की तो आकृतियां और आकार आदि भी हम से नहीं मिलते। आप कहते हैं कि वे प्रदेश भारत के अंग थे।'

वह व्यक्ति कुछ क्षण तक मौन रहा और सम्भवत: यह अनुमान लगाता रहा कि वृद्ध पुजारी और उनके हम दोनों शिष्यों का बौद्धिक स्तर इतना उच्च नहीं है कि वह कोई उच्चस्तरीय अथवा गहन ज्ञानपूर्ण बात हमें बताए। अन्त में वह बोला—

'आर्य शक्तियों के दुर्बल होने के उपरान्त नाटे डील-डौल और चपटी नाक वाली जाति के लोगों ने इन देशों पर अधिकार कर लिया और वहां के आदिम निवासी पुरुषों का बध कर दिया और स्त्रियों को बलात् अपने घरों में डाल लिया। जिससे उनकी नस्ल ही विकृत हो गई और आकृतियों में भी अन्तर आ गया। और वहां के लोग उन्हीं बातों से घृणा करने लगे, जिन पर उनके पूर्वज गर्व करते थे।'

'हमने भी तो इतिहास और भूगोल पढ़ा है, हमें तो कहीं ऐसा उल्लेख नहीं मिलता।'

'यद्यपि इतिहास के अधिकतर सच्चे ग्रंथ नष्ट कर दिए गए हैं, परन्तु उनमें से कुछ अभी भी कतिपय मठ मन्दिरों में पूरे या अधूरे उपलब्ध हो ही जाते हैं। उधर जोजीला के उस पार एक चट्टान फूटी थी तो उसमें एक पुरानी गुफा मिली थी। उसमें समाधि लगाए हुए एक सिद्ध योगी बैठा था। समाधि से जाग्रत होकर उस मुनि ने बताया था कि अब से एक सहस्र वर्ष पूर्व मध्य एशिया और मंगोलिया में भी वैदिक धर्म के अनुगामी रहते थे। और वह स्वयं वहां जाकर यज्ञ हवन आदि कराते रहे हैं।'

गुरुदेव को तो क्या हम में से किसी को भी उस व्यक्ति की बात पर विश्वास नहीं हो पाया। गुरुदेव मुस्कराकर कहने लगे 'मुझे तुम्हारी विद्या और ज्ञान का तो पता नहीं किन्तु एक बात सही है कि तुम्हें झूठ गढ़ना बहुत अच्छी तरह आता है।'

गुरुदेव के ये शब्द उस व्यक्ति को बाण के समान चुभे और वह तनिक कटु शब्दों में बोला, अंधों को हाथी के दर्शन कैसे कराऊँ। अंधा हाथी के कान, सूँड, टांग अथवा पूँछ का तो स्पर्श कर सकता है, परन्तु तुम तो इतना प्रयास करने को भी तैयार नहीं हो। तुम तो अस्तित्व से इन्कार करते हो।'

'इसी पर तू-तू-मैं-मैं होने लगी। हमें उसकी बातों पर क्रोध आ गया और वह इतना बढ़ा कि हमने सोचा कि इसे पीट-पीट कर अधमरा ही कर दें। परन्तु जोरावर !'

'क्या हुआ ?'

'मुझे अब ऐसा लगता है कि वह सत्य ही कह रहा था। हिन्दू धर्म कभी गौरव के इस उच्च शिखर पर था या नहीं था, यदि इस बात को एक ओर भी छोड़ दें तब भी यह तो निश्चित ही है कि एक ब्राह्मण का जीवन इस प्रकार का नहीं होना चाहिए, जैसा कि हम बिता रहे हैं। एक सच्चे ब्रह्मण को प्रकाण्ड विद्वान्, त्यागमूर्ति बन कर धर्म प्रचारार्थ घर से बाहर निकलना ही चाहिए। उस समय जब विभिन्न मत-मतान्तर हिन्दू धर्म की जड़ों को खोखला करने में लगे हों तो उस को ऐसा करना और भी अधिक आवश्यक है। दक्षिण की केरल भूमि का एक नम्बूद्री ब्राह्मण आदि शंकराचार्य उत्तर में हिमगिरि की हिमाच्छादित पर्वतीय शैलमालाओं में आकर धर्म की पावन पताका फहराए और हम जम्मू-कश्मीर से उठकर लद्दाख और तिब्बत तथा मंगोलिया तक भी न जाएं इससे बढ़कर अधिक ग्लानि की बात और क्या हो सकती है भला !'

'आप धर्म प्रचार हेतु बाहर जाएँगे ?'

'हां, मैं ऐसा निश्चय करने लगा हूँ। काश ! वह व्यक्ति मुझे पुन: मिल जाए तो मैं उससे न केवल अपनी मूर्खता के लिए क्षमा ही मांगूंगा अपितु उसके साथ मिलकर कार्य भी करने लगूंगा। जहां वह भेजेगा चला जाऊँगा।'

'दो घड़ी पहले जिसके सिर पर लट्ठ मारने को फिर रहे थे अब उसे ही गुरु बनाने को उतावले हो उठे हो !'

'कुछ पता है कि वह किधर गया है ?'

'यहां से तो वह जोजीला दर्रे की ओर गया था। आगे जाकर वह किस दिशा में मुड़ गया होगा कौन जाने।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'ऐसा लगता है कि उसने बहुत कुछ देखा है, इस संसार में।'

जोरावर उसे अपने विचारों में खोया छोड़कर मन्दिर से बाहर आ गया। वह पुनः उसी बहेड़े के वृक्ष के नीचे बैठकर यह विचार करने लगा कि उसे अब क्या करना चाहिए। परन्तु अब उसके मन में शान्ति नहीं थी। सहसा ही उस वृक्ष की डाली पर दो बुलबुलें आकर बैठ गईं। वे चहचहाने लगीं। पनघट पर पानी भरने आई दो युवतियाँ खाली घड़े लिये हुए वहाँ से गुजरीं। ये सुन्दरियाँ उसकी गली में रहती थीं। वे उससे मखौल करती हुई बोलीं—

'ओ रे जोरा, किधर गई तेरी जोरुआ।'

जोरावर सदा ही लड़कियों से दूर रहता था और कुश्ती, व्यायाम और शस्त्रास्त्र चलाना ही था उसका शौक। उसने इस विनोद का कोई उत्तर न दिया। वह मौन वहीं बैठा रहा।

'अरे ब्रह्मचारी, बोलता भी नहीं! क्या तेरी नानी मर गई है?'

किन्तु वह फिर भी नहीं बोला। तभी दो लड़कियाँ और आ गईं।

'अरी कैन्थो! जल्दी आ, तुझे एक तमाशा दिखाऊँ। देख जोरा की एक आँख में एक रीछ बैठा है दूसरे में एक गिलहरी। अरी मुई तनिक पास से जाकर देख ना।'

अपना घड़ा दूसरी युवती को देकर कैन्थो जोरावर सिंह के सम्मुख जा खड़ी हुई। अपने दोनों हाथ कूलों पर रखकर वह उसकी ओर घूरती सी बोली 'अरी एक नहीं इसकी आँख में तो कई रीछ बैठे हैं।' और सहसा ही वे सब खिलखिला कर हँस पड़ीं। इस पर जोरावरसिंह भी हँसे बिना न रह सका।

'निगोड़ियो! परमात्मा तुम्हें समझे।'

'अरे युवती को क्या समझेगा, वह भी जब तक कि हमारा विवाह नहीं हो जाता, परमात्मा भी हमें नहीं समझ सकता। हम यदि चाहें तो परमात्मा को भी चक्कर में डाल दें। यह कथा नहीं सुनी है तुमने कि हिमालय पर हमारी सरीखी ही एक सुन्दरी रहती थी, जिसका नाम था पार्वती। उसने शिवजी महाराज को भी ऐसे चक्कर में डाला, ऐसे चक्कर में डाला, कि बस—।'

'कि वे भी पाषाण बनकर ही रह गए हैं।—बाप रे!' कैसी विचित्र बातें करती हो। देखें हमें भी कोई पार्वती मिलती है या नहीं।' यह कहकर जोरावर वृक्ष के नीचे से उठकर चल दिया और वे नवयौवनाएँ यौवन के उस साक्षात् अवतार को देखती ही रह गईं। उनकी नजरें उस सुन्दर हृष्ट-पुष्ट क्षत्रिय नवयुवक को तब तक देखती रहीं, जब तक वह उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।

इस अंक में २५ २६ पृष्ठ नहीं हैं।

ज्ञान का आदि स्रोत

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं, यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्, प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥

अर्थ—(बृहस्पते) हे बृहस्पति अर्थात् महान् ज्ञान से युक्त वेदवाणी के स्वामी परमात्मन् (प्रथममं) सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों की उत्पत्ति के समय, आदिम ऋषियों ने (यत्) जो (अग्रम्) पहले-पहल (नामधेयम्) विभिन्न पदार्थों के नामों को (दधानाः) धारण करने वाली, देने वाली (वाचः) वेद की वाणियों को (प्रैरित) प्रेरित किया, वह वेद-ज्ञान (यत) क्योंकि, (एषाम्) इन ऋषियों का (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठत्व था (यत्) क्योंकि इनका (अरिप्रम्) निष्पापत्व) (आसीत्) था (तत्) इसलिए (प्रेणा) अपनी प्रेरणा या अपने प्रेम से, अपने (एषाम्) इनके (गुहा) हृदय में, बुद्धि में (निहितम्) रख दिया, वही उन आदिम ऋषियों द्वारा अन्य मनुष्यों के लिए (आविः) प्रकट हुआ।

जब मनुष्यों की सृष्टि हुई तो वे कोई वाणी, कोई भाषा नहीं जानते थे। परमात्मा ने आदिम ऋषियों को ज्ञान देकर उन्हें वेदवाणी, वेद की भाषा सिखाई। उन ऋषियों ने यह वेद का ज्ञान अन्य मनुष्यों को सिखाया और वेद की वाणी, वेद की भाषा, उनमें प्रचलित की। इस प्रकार परमात्मा ने आदिम ऋषियों को ज्ञान दिया और भाषा सिखाई। भाषा बिना सिखाये नहीं आ सकती। इसलिए परम्परा से भाषा सिखाने वाला आदि गुरु परमात्मा को ही स्वीकार करना पड़ता है। प्रलय से पूर्व की सृष्टि में उनके कर्म जब से श्रेष्ठ और सबसे निष्पाप रहे थे। उनके इन सबसे पवित्र कर्मों के फलस्वरूप उन्हें प्रलय के बाद इस सृष्टि में परमात्मा ने पवित्र वेदज्ञान का अधिकारी तथा अन्य सब मनुष्यों का प्रथम गुरु बनाया। और इस प्रकार संसार में ज्ञान प्रवाहित हो गया।

वेदभाष्य का वितरण

अब केवल सूर्यनगर कार्यालय से ही हो रहा है। सारे रजिस्टर और रिकार्ड वहीं है।

कृपया वहीं पत्र लिखें या सम्पर्क करें।

प्रबन्धक—वेद भाष्य कार्यालय, ३३७-ए सूर्यनगर
P. O. चिकम्बरपुर, दिल्ली-११००३२
फोन—२०१५८४

यह स्थान विवेक विहार के निकट है—दिल्ली-गाजियाबाद चुंगी बार्डर से दक्षिण की ओर।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राजस्थान की क्रान्तिकारी त्रिमूर्ति

● ● ●

राजस्थान में लोक-चेतना की भूमिका का निर्वाह करने के लिए सदियों से सरनाम चारण-समाज के प्रतिष्ठित बारहठ परिवार में जन्मे ठाकुर केसरी सिंह न केवल उद्‌भट विद्वान् और ओजस्वी कवि थे, अपितु महान् देश भक्त और जागरण का जयनाद करने वाले अप्रतिम क्रांति दूत भी थे।

केसरी सिंह

उनकी प्राणवान् काव्य धारा ने जहाँ सुषुप्त राज्यवर्ग को अपने अतीत के गौरव का स्मरण करा कर इसे झकझोरा, वहाँ उनकी क्रान्तदर्शी विचार धारा ने राजस्थान के राजनीतिक कार्यकर्ताओं को जन सामान्य में पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ फेंकने के लिए अलख जगाने का आह्वान किया।

मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए प्रारम्भ किये गये इस अनुष्ठान में उन्होंने अपने अनुज जोरावर सिंह और पुत्र प्रताप सिंह को भी अपनी आहुति देने के लिए आहूत किया।

सन् १९०३ में अंग्रेजी शासन की प्रभुता और वैभव का प्रदर्शन करने के लिए ब्रिटिश वाइसराय लार्ड कर्जन ने दिल्ली में एक विशिष्ट दरबार का आयोजन किया और उदयपुर के महाराणा फतह सिंह उसमें भाग लेने के लिए रवाना हुए, तो केसरी सिंह जी ने 'चेतावणी रा चूंगटया' शीर्षक से कुछ सोरठे महाराणा के पास भेजे, जिन्हें पढ़कर वे इतने अभिभूत हुए कि दिल्ली पहुँचकर भी दरबार में विना सम्मिलित हुए वापस लौट आये। वस्तुतः स्वातन्त्र्य चेतना की पहली चिनगारी बारहठ जी के इन्हीं सोरठों के साथ विकीर्ण हुई।

उन्हीं की प्रेरणा से राजस्थान में 'अभिनव भारत' क्रान्तिकारी संगठन की शाखा स्थापित हुई। उन्होंने राजपूत नरेशों और जागीदारों को क्रान्तिकारी संगठन में लाने के लिए 'वीर भारत सभा' की स्थापना की। श्री अरविन्द, बंगाल और महाराष्ट्र के सभी प्रमुख क्रान्तिकारियों से उनका निकट का सम्पर्क था और श्री रासबिहारी बोस उनके घनिष्ठ मित्रों में थे।

उन्होंने राजस्थान के युवकों को बड़ी संख्या में क्रान्तिकारी संगठन में भर्ती किया और उनको क्रान्तिकारी प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस के प्रमुख सहायक मास्टर अमीरचन्द के पास भेज दिया।

ब्रिटिश सरकार को केसरीसिंह जी की क्रान्तिकारी कारवाइयों के सम्बन्ध में संदेह हो गया। बिहार में निमेज के धनी महन्त की हत्या के सम्बन्ध में श्री अर्जुनलाल सेठी के विद्यालय की तलाशी हुई। उसमें एक सांकेतिक भाषा में पत्र मिला जिसके आधार पर दो वर्ष पुरानी घटना प्यारे राम साधु के रहस्यमय ढंग से लापता हो जाने के मामले को पुनः उठाया गया। केसरीसिंह जी को गिरफ्तार कर लिया गया। मि० आर्मस्ट्रांग इन्सपेक्टर जनरल पुलिस, इन्दौर की देखरेख में कोटा में उन पर प्यारे राम साधु की हत्या का अभियोग चलाया गया और प्रमाण न मिलने पर भी उन्हें २० वर्ष के कठोर कारावास का दंड दे दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने राज्य सरकार पर दबाव डालकर उन्हें हजारी बाग जेल भेज दिया। उनकी पारिवारिक जागीर, हवेली जब्त कर ली गई और उनकी चल सम्पत्ति लूट ली गई।

जोरावर सिंह

अपने अग्रज का अनुसरण करते हुए अनुज जोरावर सिंह जी क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गये। राजकीय सेवा का वैभवपूर्ण जीवन उन्हें क्रान्तिदल में सम्मिलित होने से नहीं रोक सका। निमेज (आरा) के महन्त की राजनैतिक हत्या में वे सम्मिलित थे परन्तु व फरार हो गए। जब महाविप्लवी नायक रासबिहारी बोस ने लार्ड हार्डिज पर बम फेंक कर 'ब्रिटिश अजेय हैं', इस भावना को समाप्त करने की योजना तैयार की तो जोरावर सिंह और प्रताप सिंह को बुला भेजा। २३ दिसम्बर, १९१२ को जब ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति का प्रतीक वाइसराय का भव्य जुलूस दिल्ली के चाँदनी चौक में पहुँचा तो जोरावर सिंह और वसन्तविश्वास ने लार्ड हार्डिज को रुधिर स्नान करा दिया। संसार के सभी देशों में राजनैतिक भूकम्प आ गया। भारतवासी ब्रिटिश शासन को वरदान के रूप में स्वीकार करते हैं, इस झूठे प्रचार का भवन ढह गया। जोरावरसिंह प्रतापसिंह को लेकर दिल्ली से निकल गए। उस दिन से जीवन के अंत तक वीरवर जोरावरसिंह राजस्थान और मालवा के वनआच्छादित पर्वतीय प्रदेशों में अमरदास वैरागी के नाम से फरार अवस्था में भटकते रहे। ब्रिटिश शासन की तलवार उनके सिर पर लटक रही थी, कष्टों का पारावार न था, पर वे विचलित नहीं हुए। फरारी अवस्था में ही निमोनिया से पीड़ित होकर १७ अक्टूबर १९३९ को वे चिरनिद्रा में मग्न हो गये।

प्रताप सिंह

अपने पुण्यश्लोक पिता और काका की भाँति प्रताप का देशभक्ति पूर्ण व्यक्तित्व भी कम आग्नेय न था। रासबिहारी बोस ने उनको राजस्थान में क्रान्तिकारी दल तथा सशस्त्र क्रान्ति का संगठन करने का दायित्व सौंपा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

था। उन्हें क्रान्तिकारी कार्यों का प्रशिक्षण देने के लिए कुछ दिनों रासबिहारी ने अपने साथ रखा और तत्पश्चात् उन्हें राजपूताना की सैनिक छावनियों में भारतीय सैनिकों तथा युवकों को मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के लिए होने वाली सशस्त्र क्रान्ति में भाग लेने के लिए तैयार करने के लिए भेज दिया।

प्रतापसिंह उस समय केवल बीस वर्ष के थे। इतनी अल्प आयु में भी वे क्रान्तिकारियों के सर्वमान्य नेता बन गये।

जब उनके नेता ने हार्डिंग पर बम फेंकने की योजना तैयार की तो उनके चाचा जोरावरसिंह बारहठ के साथ बम कांड में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया परन्तु उनके विरुद्ध कोई प्रमाण न होने से वे छोड़ दिए गए। रासबिहारी बोस अब भूमिगत हो गए थे। उनको पकड़ने के लिए भारी पारितोषिक की घोषणा की गई। उनसे मिलना भी खतरनाक था, पर खतरे की तनिक भी चिन्ता न कर वे अपने नेता से भावी विप्लव के सम्बन्ध में निर्देश लेने के लिए नदिया जाकर मिले जब वे क्रान्ति के संगठन का कार्य कर रहे थे तो जोधपुर राज्य में आशानाड़ा स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिए गए। बनारस षड्यंत्र में उन्हें पांच वर्ष का कारावास हुआ।

सरकार के गुप्तचर विभाग के निर्देशक सर चार्ल्स क्लीवलैंड बरेली सेन्ट्रल जेल पहुंचे। उन्होंने प्रतापसिंह को ऊँचा पद देने, परिवार की जब्त जागीर को वापस कर देने, बाप और चाचा को दोषमुक्त कर देने के लालच दिए, परन्तु प्रतापसिंह टस से मस नहीं हुए। तब उनकी कोमल भावनाओं को छुआ गया और कहा गया कि उनकी माता उनके लिए दिन और रात रोती है, यदि उन्होंने सरकार को क्रान्तिकारी दल का भेद नहीं बतलाया तो वे प्राण त्याग देंगी, तब प्रतापसिंह ने सर चार्ल्स क्लीवलैंड को सच्चे देश भक्त की तरह यह निर्भीक उत्तर दिया।

'तुम कहते हो कि मेरी माता मेरे लिए दिन रात रोती है। मेरी माँ को रोने दो। अपनी माँ को हंसाने के लिए मैं हजारों माताओं को रुलाना नहीं चाहता, यदि मैं अपने साथी क्रान्तिकारियों की माताओं को रुलाने का कारण बना तो वह मेरी मृत्यु होगी और मेरी माँ के लिए घोर कलंक होगा।'

बरेली जेल में उन्हें घोर यन्त्रणाएं दी गईं और बाईस वर्ष की कोमल आयु में वे कीर्तिशेष हो गए।

उल्लेखनीय है कि गत वर्ष भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के गीत एवं नाटक संभाग द्वारा राजस्थान सरकार के सहयोग से 'बढ़ते कदम' शीर्षक दृश्य एवं श्रव्य कार्यक्रम तैयार किया गया था, जिसमें देश के स्वतंत्रता संग्राम की झांकी रूपायित की गई थी। इस कार्यक्रम में बारहठ केसरीसिंह की क्रान्तिकारी भूमिका और उनके सुपुत्र प्रतापसिंह की शहादत का प्रसंग भी सशक्त ढंग से चित्रित किया गया था। यह कार्यक्रम जयपुर में लगभग दो माह तक प्रदर्शित किया गया था।

शाहपुरा में इन क्रान्तिकारी विभूतियों की प्रतिमाएं केसरीसिंह बारहठ स्मारक समिति द्वारा प्रतिष्ठापित की गई हैं। इस समिति के अध्यक्ष राजस्थान के विख्यात वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी श्री गोकुललाल असावा हैं। ●

विजिगीषा

—कु० सविता आर्य

मां तुम्हीं ने तो कहा था, मैं बनूं चट्टान दृढ़तर।
पिता तुमने ही दिया वह, मंत्र मुझको जन्मते ही॥
"अश्मा भव परशुर्भव"
ढहा दूं अज्ञान के गढ़,
दबा दूं अन्याय के स्वर,
दूर कर कृत्रिम विषमता,
पाठ भूला फिर सिखा दूं,
प्यार श्रद्धा और समता,
मां तुम्हीं ने कहा था, मैं बनूं स्नेह सरिता।
पिता तुमने ही दिया वह ज्ञान का सम्बल अनोखा॥
आज जब शिक्षा समापन,
आज जब व्रतोद्घोषण,
जब कि चारों ओर मेरे,
बेबसों का आह! क्रन्दन...
रोकते क्यों हो मुझे रंगीन सपनों में भुलाकर।
टोकते क्यों हो मुझे वीरानियां पथ की दिखाकर॥
मां करो विस्तार मन का!
पिता दो आशीष,
भाई आत्मबल का, दान दे दो
और मां दे दो तुम्हारा धैर्य का सम्बल अटलतर
आज ऋत की प्रवर्तक बन,
आज सत् की अग्नि में जल,
अंधेरे पथ को मैं दीपक दान दे दूं।
टूटते स्वर को मैं जीवित राग दे दूं॥

(शेष पृष्ठ १६ का)

इसलिए भगवद्गीता में इस गम्भीर सिद्धान्त को बड़ी सरलता से समझाया गया है:—

ये हि संस्पर्शजा भोगाः दुःख योनय एव ते।
आद्यन्तवंतः कौन्तेय न तेषुरमते बुधः॥

अर्थात् हे अर्जुन! संसार के पदार्थों के सम्पर्क से जो सुख उत्पन्न होता है वह परिणाम में दुःखकारक है, क्योंकि वह आदिवाला और अन्तवाला है। इसलिए बुद्धिमान् लोग ऐसे सुख में रुचि नहीं रखते।

अब देखना यह है कि ऐसा कोई तत्व भी है जो अविनाशी और स्वभाव से ही आनन्दस्वरूप है, सनातन और शाश्वत है। बड़े-बड़े योगियों और ऋषियों ने इस विषय में खूब छानबीन की और अनुभव करके बताया कि ऐसा तत्व है, और ब्रह्म के नाम से उसका सम्बोधन किया तथा उसके अनेक नाम रखे गये। उन नामों से तात्पर्य यह था कि वह शाश्वत सुख और आनन्द का भण्डार है और उसकी आज्ञा का पालन करके उनकी कृपा प्राप्त करने से ही हमको शाश्वत सुख मिल सकता है। यह परा विद्या का विषय है और इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए सद्गुरु की आवश्यकता है। हरेक व्यक्ति अपनी-अपनी योग्यता व श्रद्धा के अनुसार इसमें उद्योग कर सकता है। परन्तु यह आखिरी मंजिल की बात है, इसलिए हम सबको धीमे-धीमे सीढ़ी-दर-सीढ़ी आगे बढ़ना चाहिए। ○

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दमा : एक भयंकर बीमारी

—वैद्य भूदेव वर्मा

****

श्वास रोग दारुण कष्टप्रद रोग है। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों में इस रोग के निवारण करने के लिए अनेकानेक औषधियों का आविष्कार हुआ है, किन्तु वे अभी तक इस रोग को समूल नष्ट करने में सफल हुई हों, ऐसा नहीं कहा जा सकता। केवल आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में ही कुछ ऐसी व्यवस्था है कि जिससे रोगी को चिरन्तन लाभ हो सकता है।

श्वास रोग प्रायः सर्दी के मौसम में अधिकतर पाया जाता है। इस रोग की उत्पत्ति आम तौर पर में दो प्रकार से होती है। एक कृत्रिम श्वास, दूसरा अशुद्ध श्वास। सामान्यतः या दोनों प्रकार के श्वासरोगियों को श्वास लेने में अत्यधिक कष्ट रहता है। खांसते-खातेस रोगी परेशान हो जाता है और रोगी दौरे के समय विपन्नावस्था में यह कहने लग जाता है कि किसी प्रकार से मेरा जीवन बच सके। श्वास रोग के वेग के समय रोगी न लेट सकता है और न बैठें चैन पड़ता है तथा न सो पाता है।

श्वास रोग पांच प्रकार के हैं। इन पाँचों में से महाश्वास, अर्धश्वास और छिन्न-श्वास असाध्य माने जाते हैं किन्तु तमक तथा क्षुद्रश्वास दोनों ही साध्य हैं।

श्वास रोग निदान

विदाही (जलन पैदा करने वाले) भारी, देर से पचने वाला भोजन व शीतयुक्त स्थान पर रहने से, अधिक धूल तथा धुंएं से, मलमूत्र आदि वेगों के रोकने से श्वास रोग उत्पन्न हो जाता है। शुद्ध श्वास के अतिरिक्त कृत्रिम श्वास में प्रायः उदर रोग तथा पेट में कृमि रोग के कारण स्नोफिलिया (रक्त में एक प्रकार के जीवाणु) बैठ जाते हैं। परीक्षण करने पर यदि इनकी ३-४ प्रतिशत से अधिक संख्या बढ़ जाती है अर्थात् कभी-कभी, ६० तथा ७० प्रतिशत तक बढ़ जाते हैं, तब ऐसी परिस्थिति में रोगी को लेटना, बैठना दूभर हो जाता है। प्रायः आज इसी प्रकार के रोगी देश में पाए जाते हैं जिनकी यदि अच्छे ढंग से चिकित्सा की जाए तो कुछ समय में ही स्वस्थ हो जाते हैं। सचमुच देखा जाए तो यह रोग यदि परम्परागत चला आ रहा है तब अत्यन्त कष्टदायक होता है। इस रोग में आजकल यह भी देखने को मिलता है कि अत्यधिक समय तक श्वास रोग होने के कारण सांस अधिक फूलने लगता है जिसके कारण दिल चौड़ जाता है, दिल चौड़ जाने पर अनेकानेक व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं, जैसे मुख का सूज जाना, पैरों का सूज जाना तथा कभी-कभी शरीर भी सूज जाता है, पेशाब की मात्रा बहुत ही कम हो जाती है। ऐसी अवस्था उत्पन्न होने पर चिकित्सक को बड़ी सावधानी से चिकित्सा करनी चाहिए।

चिकित्सा

जो कोई भी औषध, अन्न या पान (पीने द्वारा) कफ या वात को नष्ट करने वाली हो वह श्वास रोगियों के लिए हितकारक है। साधारणतः सुबह-शाम श्वास-कुठार रस ४-४ रत्ती की मात्रा में अदरख और शहद के साथ मिलाकर देना चाहिए, यदि वातजन्य श्वास रोग है तो पिप्पल्यादि लौह अथवा श्वासान्तक लौह सुबह शाम ५-५ रत्ती के हिसाब से च्यवनप्राश ४ माशा तथा वासावलेह २ माशा मिलाकर सेवन कराना चाहिए। पाचनशक्ति को ठीक रखने के लिए भोजन के बाद दोनों समय पिप्पल्यासव तथा कनकासव इन दोनों को ६-६ माशा मिलाकर दूना पानी मिलाकर देना चाहिए। रात्रि को सोते समय भुनी हुई हल्दी का चूर्ण ४ रत्ती से १ माशा तक दूध के साथ लेना चाहिए। इसके साथ ही साथ कण्टकारि अवलेह का प्रयोग दिन में २-३ बार करना चाहिए।

श्वास के रोगियों को निम्न बातों पर विशष ध्यान देना चाहिए। वर्ष म २ बार क्वार तथा चत के महीने में वमन अवश्य करा देना चाहिए। तम्बाकू का सेवन सर्वथा अहितकर है। भोजन सन्तुलित होना चाहिए। यदि श्वास रोगी नियमित रूप से एक वर्ष च्यवनप्राश सुबह शाम ६-६ माशा दूध के साथ लेते रहें तो इस रोग से मुक्ति मिल जाती है।

दौरे के समये क्या करें ?

श्वास के वेग के समय कफ को तरल करके निकालने वाली औषधियां देवें। रोगी की छाती पर सेक करें तथा गाय के घी में थोड़ा-सा सैंधा नमक डाल कर छाती पर हल्की मालिश करें, दौरा होने के तुरन्त बाद रोगी को बिस्तर पर बिठा दें। यदि रोगी को अच्छा लगे तो उसकी पीठ के पीछे मसनद लगा दें और एक मसनद आगे भी रख दें। दमे के रोगी को जाड़े में पानी गरम पिलावें, ठण्ड के दिनों में रोगी को गरम कपड़े पहनावें और पैरों में मौजे पहना दें।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(शेष पृष्ठ २ का)

पुनः विदेश यात्रा

स्वदेश के विभाजन के उपरांत स्वामी जी पुनः विदेश स्थित भारतीयों के प्रबल आग्रह पर १९४९ में पूर्वी अफ्रीका व मारीशस के प्रवास पर गए और आपने ही मारीशस आर्यसमाज से नयी फूट को समाप्त कराने में सफलता प्राप्त की। १९५० में आप पुनः भारत लौटे। १९५२ में जब आर्य समाज ने गोहत्या विरोधी आन्दोलन चलाया तो आप ही उसके सर्वधिकारी बने। इसी सम्बन्ध में आप बंबई गए हुए थे तो कैंसर रोग से पीड़ित हो गए। फरवरी १९५४ में वहीं आर्य समाज के शिरोमणी संन्यासी का निधन हुआ।

स्वामी जी लोकेषणा से सर्वथा रक्त एक ऐसे संन्यासी थे कि जिन्हें अपरिग्रह के मूर्त रूप की संज्ञा दी जा सकती है। वस्त्रों के सम्बन्ध में भी उनके अपने नियम ये। ग्रीष्म ऋतु में केवल एक कोपीन धारण कर कुटिया में निवास करते तो एक धोती के दो टुकड़े कर तहमद के रूप में वर्ष भर उन्हीं से कार्य चलाते। पैरों में कपड़े के जूते ही धारण करते तो ईंटे ही उनका सिराहना बन जाती समय पालन की दृढ़ता उनका गुण था तो कटु सत्य कहने भी वे कभी न सकुचाते किन्तु ऊपर से कठोर प्रतीत होने वाले इस संन्यासी ने सुकोमल हृदय भी पाया था। निष्कपट, निश्छल व स्पष्ट वक्ता यह सभी 'चेले, चेलियों' व 'भक्त' भक्तनियों की मंडली से सर्वथा दूर ही रहा। उसका निर्मल जीवन आर्य जगत् के लिए सदैव प्रेरणा प्रदान करता रहेगा। □

वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्यमात्र के लिए

'मनुष्य मात्र को (वेद) पढ़ने का अधिकार है...।'

सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र पढ़ने (और) सुनने का अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के २६ अध्याय में दूसरा मन्त्र है:—

'परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिए (इमाम्) इस कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो········(ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय (आर्य्याय) वैश्य (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अति शूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है।'

दयानन्द चित्र दर्शन

अब छप कर तैयार है

७२ पृष्ठ : ५ रंगों में छपी

एक ऐसी पुस्तक जैसी पिछले १०० वर्ष में नहीं छपी : सर्वश्रेष्ठ कागज पर बढ़िया कपड़े की सुनहरी जिल्द और

मूल्य केवल २० रुपए

किन्तु अभी १५) की एक प्रति

शीघ्र से शीघ्र मंगा लें : स्टाक थोड़ा है।

संस्कार विधिः

अजिल्द छोटा ३) बड़ा ४)

छोटा साइज : सजिल्द ४)

बड़ा साइज : सजिल्द ६)

सत्यार्थ-प्रकाश

२२५) सैंकड़ा

ऋषि जीवनी

१००) सैंकड़ा

व्यवहार भानु : ३०) सैकड़ा

आर्योद्देश्य रत्नमाला : १५) सैंकड़ा

स्वमंतव्यामंतव्य प्रकाश : १५) सैंकड़ा

दयानन्द संस्थान

नई दिल्ली-११०००५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शक्ति के मद में कभी भी अन्धी, उग्र व अत्याचारी नहीं बन सकती। उसका नियमन व मार्गदर्शन ब्रह्मशक्ति द्वारा होगा। यह प्रबल क्षात्रशक्ति उसी अवस्था में अन्धी व अत्याचार करने वाली होती है जब कि उसका आदर्श केवल धन सम्पत्ति व प्रभुत्व की प्रबल लालसा होती है। जिस राष्ट्र में क्षात्र शक्ति का नियम ब्रह्मशक्ति द्वारा होता है उस राष्ट्र के देवों व विद्वानों का प्रेरक ब्रह्म अग्नि होती है। उस राष्ट्र को उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने के लिये वह ब्रह्म-अग्नि स्वयं प्रेरक होती है और प्रकाशस्तम्भ का काम करती है। ऐसी अग्नि को शास्त्रों में ब्रह्म और क्षत्र इन दो रूपों का बताया गया है। यथा 'अयं वा अग्नि र्ब्रह्म च क्षत्रञ्च। श० प० ६।६।३।१५ अर्थात् यह अग्नि ब्रह्म और क्षत्र इन दो रूपों को धारण किये हुए है। ब्रह्म और क्षत्र में दो शक्तियाँ जब परस्पर मिलती हैं तो इनसे ब्रह्म और क्षत्र के गुण धर्मों वाली एक अग्नि का प्रकाश तो होता है परन्तु यह अग्नि ब्राह्मणों में पहुंच प्रमुख रूप से ब्राह्मणो चित गुण धर्मों वाली होती है और क्षत्रिय में क्षात्रोचित गुण धर्मों वाली होती है। शास्त्रों में ब्रह्म और क्षत्र इन दोनों की तुलनात्मक विवेचना करते हुए और भी गहरी व सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया गया है। शास्त्रों में आता है कि 'सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म, क्षत्रिय का उत्पत्ति स्थान ब्राह्मण है अर्थात् क्षत्रिय में ब्राह्मणोचित गुणधर्म तो होते ही हैं पर क्षत्रिय में ब्राह्मण से क्या विशिष्टता हो जाती है उनमें क्या परस्पर भेद है यह हम शास्त्र वचनों के आधार पर देखते हैं, इससे हमें क्षात्रशक्ति के वैदिक स्वरूप का और भी अधिक स्पष्टीकरण होगा। वहाँ आता है कि

ब्रह्म वा अग्निः क्षत्रं सोमः कौं ९।५ क्षत्रं सोमः ऐ. २।३८, क्षत्रं वै सोमः, श.प. ३।४।१।१० ५।३।५।८

अर्थात् ब्रह्म व ब्राह्मण अग्निरूप होते हैं और क्षत्र व क्षत्रिय सोम रूप अर्थात् सौम्य रूप। ये शास्त्रीय वचन प्रथम दृष्टि में ठीक नहीं प्रतीत होते परन्तु गम्भीरता से विचार करने पर एक आदर्श क्षत्रिय का स्वरूप हमारे सामने स्पष्ट होता है। आइये! कुछ थोड़ा विस्तार से इन वाक्यों पर विचार करें। शास्त्रों में लिखा मिलता है कि यह जगत् अग्निबोधात्मक है। संसार की प्रत्येक वस्तु में अग्नि और सोम ये दो तत्त्व होते हैं, भेद केवल इतना होता है कि किसी वस्तु का स्वरूप अग्नि है तो सोम उसका सहायक है और किसी वस्तु का स्वरूप सोम है तो अग्नि सहायक है। इसी दृष्टि से यदि हम ब्राह्मण और क्षत्रिय के स्वरूप पर विचार करें तो हम यह कह सकते हैं कि ब्राह्मण का स्वरूप तो अग्नि है और सोम उसका सहायक है। शास्त्रों में सोम को ब्राह्मणों का राजा भी कहा है 'सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा' श०प० ५।४।२।३ इसी बात को यदि हम और शब्दों में कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि ब्राह्मण का अग्नि तो स्वस्वरूप है और सोम का उस पर आवरण है। अब जैसा कि यह उक्ति प्रसिद्ध है कि 'यथा राजा तथा प्रजा' 'अर्थात् जैसा राज होता है वैसी ही प्रजा होती है' इसी प्रकार ब्राह्मणों का अग्निरूप होते हुए भी क्योंकि सोम राजा है इसीलिए उन्हें सौम्य बनना पड़ता है। आवरण के शब्दों में कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि ब्राह्मणों के अग्नि रूप होते हुए भी क्योंकि ब्राह्म आवरण सोम का है इसलिये ब्राह्म प्रदर्शन सोम का ही होता है। ब्राह्मण की अग्नि भट भड़क उठती है पर शान्त भी तत्काल हो जाती है क्योंकि सोम उसको शान्त करने वाला है। इसके विपरीत क्षत्रिय सोमरूप है परन्तु उसका राजा व आवरण अग्नि है इसलिये क्षत्रिय का ब्राह्म प्रदर्शन व कार्य अग्नि रूप होता है। यदि क्षत्रिय सोम रूप न होते तो दूसरे के दुःख व अत्याचार को देखकर इतने न पसीजते कि अपने प्राणों की आहुति देने के लिये तैयार हो जाते। क्योंकि पसीजना दयार्द्र होना पिघलना आदि सोम का गुण है। इसीकारण क्षात्र शक्ति को शास्त्रों में 'उदक' भी कहा गया है। निघण्टु १।१२ में 'क्षत्र' को 'उदक' नामों में पढ़ा है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि क्षत्रिय सामान्य अवस्था में सोम रूप हैं सौम्य हैं, शान्त कहाते हैं पर युद्ध के समय सोम में गति व विकृति पैदा होने पर अग्नि प्रकट होती है क्योंकि ब्राह्म आवरण अग्नि का है। क्षत्रिय उदक रूप है, सोम रस रूप है इसलिये उसका सहज गुण चहुं ओर फैलने का है। एक स्थान पर स्थित जल सड़ जाता है इसलिये उसका प्रवाहित रहना ही ठीक है। इसी प्रकार क्षत्रियों की शुद्धि प्रजा में फैलने में है। चहुं ओर जाकर प्रजा के कष्टों को दूर करना क्षत्रियों का धर्म है दूसरी ओर ब्राह्मण अग्नि रूप है अग्नि का सर्वोत्तम रूप ऊर्ध्वरोहण का है। क्षत्रिय का प्रजा में फैलाव यश की दृष्टि से भी हो सकता है। क्षत्रिय का धर्म यशस्वी बनना है। परन्तु ब्राह्मण यश व सम्मान से विष के तुल्य घबराये (मनु २।१६२)। इस प्रकार शास्त्र वचनों के आधार पर हमने संक्षेप में ब्रह्म शक्ति से तुलना व समन्वयात्मक दृष्टि से क्षत्रिय के वैदिक स्वरूप पर विचार किया है। ●

(शेष पृष्ठ १ १का)

बल कानून बनाने वाला नहीं है, वरन् कानून का सेवक है। शासन करने वाला सिद्धान्त धर्म या औचित्य है, बल उसके आदेशों का पालन करवाता है। महाभारत में विद्यार्थियों का आदर्श इस तरह बताया गया है—'आगे चारो वेद हों, पीछे धनुष-बाण हों, एक ओर आत्मा अपने आत्मिक बल से अपनो लक्ष्य-प्राप्ति में लगो हो और दूसरी ओर सैन्य-बल अपने उद्देश्य को पूरा कर रहा हो।'

जहाँ अहिंसा संभव न हो, वहाँ हिंसा की अनुमति दी गई है। महाभारत में कहा गया है—'यदि कोई ग्राम के कल्याण के लिए, स्वामी के प्रति निष्ठा के कारण या असहायों की रक्षा के लिए किसी को मारे, कैद करे या कष्ट दे, तो वह पाप नहीं करता।' फिर—यदि गुरु शिष्य को दंड दे, स्वामी सेवकों को दंड दे और राजा अपराधी को दंड दे, तो उसे पुण्य होता है।'

मनु कहते हैं, "आततायी को—चाहे वह गुरु, बूढ़ा या जवान, या विद्वान् ब्राह्मण ही क्यों न हो—निस्संकोच मार डालना चाहिए।" वेदों में युद्धों का वर्णन है और उन में अपनी विजय और शत्रु की पराजय के लिए प्रार्थनाएँ हैं। महाकाव्यों में नायक देवताओं के शत्रु असुरों से युद्ध करते जरा भी नहीं हिचकते। यहाँ तक कि ब्राह्मण भी शस्त्र धारण करते थे। ★

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्राचीनता : आधुनिकता

—प्रो० सन्तराम आनन्द

★★★★

नगर के ठीक बीच नगर-निगम का बनाया हुआ यह कृत्रिम वन कैसा सुन्दर और सुहावना दृष्टिगोचर हो रहा है ! नगर की तंग गलियों की छोटी-छोटी कोठरियों में बसनेवालों के लिए यह एक स्वर्ग का स्थान है। अवकाश ग्रहण किये हुए अथवा वृद्ध पुरुषों की विश्राम भूमि है। मध्याह्नोत्तर बाग के कई एक स्थानों पर कथाओं का बँचना आरम्भ हो जाता है। कहीं महाभारत की कथा हो रही है तो किसी ने रामायण का प्रसंग छेड़ रखा है।

इन पुरानी घटनाओं को सुनने के लिए वृद्ध, युवक, स्त्री, अथवा अन्य श्रोतागण बैठे हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे प्रस्तर युग के जीवावशेष हों। वास्तव में यही इनकी धारणा, ध्यान और समाधि है, क्योंकि केवल शब्दों को श्रोत्रों से ग्रहण करना ही ये 'जरा और मृत्यु' के क्लेशों की निवृत्ति समझते हैं। कुछेक अपने जीवन की अनमोल घड़ियों को ताश और शतरंजादि खेलों में ही व्यतीत कर रहे हैं। उद्यान की हरियाली के मखमली फर्श पर बैठे हुए श्वेत बालोंवाले कुछ वृद्ध अपनी बीती जवानी की मीठी-मीठी स्मृतियों में आनन्द की कृत्रिम अनुभूति को प्राप्त करने के लिए कहकहे लगा रहे हैं, इस भाव से कि संभवत: इससे फिर यौवन आ जाये।

पार्क के बाचों-बीच एक झरना है, जिसके चारों ओर पक्की ईंटों का एक चबूतरा बना हुआ है। कुछ लोग इस पर बैठे अपना समय काटते हुए देखे जाते है।

आज इस चबूतरे पर खड़ा एक युवक ऊँचे स्वर से अपने हाथ को उठाये कुछ कह रहा है। इधर-उधर घूमने वाले बहुत से लोग भी उसके इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गये हैं। युवक कह रहा है—

"प्रिय सज्जनो, सुनो ! प्राचीनता एक पुरातनता है, जो व्यतीत हुए काल का नाम है, इसलिए यह गतप्राण है। आधुनिकता तो एक नवीनता होती है, जो वर्तमान है, सुन्दर है तथा सजीव है। इसलिए यह विकासशील हुआ करती है। आपने यह शास्त्रोक्ति तो सुनी होगी—

मृत्योर्माऽमृतं गमय।

अर्थात् मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो। कौन ले चले ? इसके उत्तर में सम्भवत: आप कहें कि उसमें जो संकेत है, वह एक अज्ञेय उत्पादक शक्ति की ओर है। परन्तु मैं आपको बतलाता हूँ कि यदि कोई ऐसी चेतना है, तो वह केवल एक प्रेरक के रूप में ही हो सकती है। आपको कंधों पर उठाकर ले जाने वाली ऐसी कोई शक्ति नहीं और यदि किसी ने कंधों पर उठाया हुआ है, तो वह केवल एक मृत्यु की ही शक्ति हो सकती है।" और फिर उसने कहा, "देखो, हमारे देश की संस्कृति और सभ्यता भी पुरानी हो चुकी है, इसलिए ये प्राणहीन होने के कारण हेय है। अब इनके लिए किसी मृत-संजीवनी की खोज करना कुछ लाभदायक नहीं होगा। इसलिए नवीनता को अपनाओ। आप यह तो जानते ही हैं कि पुरातनता क्या शिक्षा देती है ? यही कि हे बच्चो, माता-पिता का कहा मानो क्योंकि—

मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।

यदि ये आपको आरे से चीर भी दें तो उफ तक न करो। परन्तु मैं कहता हूं, कि ये सब पुरानी बातें हैं। देखो, समय बदल गया है। अब बच्चों ने मोरध्वज का आरा छीनकर फेंक दिया है। श्रवणकुमार के कन्धे भी अब दुखने लग गये हैं। इसलिए उसने भी अब कांवर को अपने कंधों से उतार दूर फेंक दिया है। बालक अब समाज के पूर्णरूपेण अंग बन गए हैं। क्या आपको मालूम नहीं कि इन्डोनेशिया की राज-पद्धति को बदलने वाले वहाँ के विद्यार्थी ही थे और फिर चीन में सांस्कृतिक आंदोलन द्वारा मार्क्स-लेनिनवाद को स्थिर रखने के नाम पर 'माओ-वाद' का अनुशासन स्थापन करने वाले भी वहां के युवक ही तो थे।"

फिर उस वक्ता ने कहा—'स्त्रियों ने भी पुरुषों का डाला हुआ जुआ अपने कन्धों से उतार कर फेंक दिया है। अब वे द्रौपदी के समान जुए में दांव का पदार्थ नहीं रहीं और न ही सावित्री की तरह अपने मृत पति को यमराज से वापस लौटा लाने की आवश्यकता समझती हैं और न ही अब वे अबला हैं, अपितु जीवन-संग्राम के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के साथ कन्धा देने को तैयार हैं। अच्छा और सुनो; बहनो और भाइयो ! ये बैल-गाड़ियां हमारे देश में कब तक चलेंगी ? हमें कब तक अपने हाथों से ठेलों को ढकेलना होगा और फिर कब तक हमें इन पूंजीपतियों की मोटर गाड़ियों को चलाना होगा ? इन सब का उत्तर स्पष्ट है कि जब तक सर्वहारा साधनहीन रहेंगे। और ये साधनहीन कब तक रहेंगे ? जब तक कि पुरातनता के पुजारी बुद्धिजीवी सर्वहारा दल के कन्धों पर जोत डाले रखेंगे !"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उस युवक का ऐसा उपदेश सुनकर कुछ अपरिपक्व और कोमल हृदयों वाले किशोर और किशोरियां यह नारा लगाते हुए कि प्राचीनता मुर्दाबाद, आधुनिकता जिन्दाबाद, पुरातनता को हटाओ और नवीनता को लाओ, दौड़ पड़ीं।

थोड़े ही समय के पश्चात् कई बालक तथा बालिकाएं दौड़ में सम्मिलित हो गईं। बच्चों का स्वभाव प्रायः तोड़ने-फोड़ने का हुआ करता है। यही उनके हृदयों का नैसर्गिक रूप है। ऐसी मनःस्थिति के कारण मार्ग पर चलती बैलगाड़ियां, मोटरें और बसें उनके आक्रमण का शिकार हो गईं। पुरानी व नई की पहचान न रही। इधर-उधर पत्थर फेंकने से कुछेक को चोटें लगीं।

शासक अथवा प्रशासक-मण्डल ऐसी घटनाओं को बच्चों का एक स्वाभाविक कार्य समझकर हँस दिया। बच्चे भी किसी प्रकार की विरोधी प्रतिक्रिया को न देखकर अपने-अपने घरों को लौट गए।

कहते हैं कि काल बड़ा परिवर्तक है और संसार परिवर्तनीय है। गीता में संसार की तुलना अश्वत्थ वृक्ष से की गई है। श्वः का अर्थ है आने वाला कल, जो आज की तरह नहीं है। इसलिए अश्वत्थ के अर्थ माने जाते हैं आगामी कल के, जो बदला हुआ होता है, अर्थात् यह संसार बदलने वाला है और इसका परिवर्तन तो एक स्वयं-सिद्ध तथ्य भी है। क्या आप प्रतिदिन नहीं देखते कि कली खिलती है, फिर फूल खिलता है, जिस पर एक भौंरा किसी आंतरिक प्रेरणा के कारण या किसी स्वाभाविक लालसा से खिंचा हुआ एक मीठे परन्तु धीमे-धीमे स्वर के साथ नृत्य करना आरम्भ कर देता है। परन्तु, फूल शीघ्र ही मुरझा कर गिर जाता है और अपने स्थान पर एक छोटा-सा बीज छोड़ जाता है और फिर यह नया बीज अपने जनक फूल के इतिहास को दुहराता है। इसी प्रकार 'आज' पिछले 'कल' से उत्पन्न होकर आगामी 'कल' को जन्म देता है। ऐसे ही प्राचीनता, आधुनिकता तथा आशाजनक भविष्य का सम्बन्ध कारण-कार्य के पर्याय में बँधा हुआ है। इनमें प्रत्येक का विकास इनकी अपनी अतीत स्थिति पर ही निर्भर हुआ करता है। हां, हो सकता है कि विकास का पथ निराला हो, या किन्हीं प्रतिकूल घटनाओं के कारण इसकी गति रुक गई हो, जिससे पुरातनता नवीनता में समा न सकती हो। इसका उदाहरण हम किसी भी पराजित अथवा शासित अथवा किसी संग्राम से दूर रहने वाली जाति के इतिहास से समझ सकते हैं। ऐसी जातियां केवल भौतिक पराजय को ही प्राप्त नहीं होतीं, इनकी संस्कृति की भी पराजय मानी जाती है जिसके कारण साधारण जनता अपनी पराजित संस्कृत से उपेक्षित हुई इसको अब केवल रीति-रिवाजों में ही स्थिर रखने का कुछ यत्न करती रहती है, जिससे विकास के स्थान पर इसका ह्रास हो जाया करता है। अतः, अब आप समझ गए होंगे कि 'अद्यतन रूप' कैसा ही हो, यह गत काल का एक बदला हुआ रूप ही हो सकता।

स्त्री-चरित्र की पवित्रता संसार को भारत की एक देन है। इसका उदाहरण कई ऐतिहासिक घटनाओं में मिलता है। महर्षि वाल्मीकि ने अपने अमर महाग्रन्थ रामायण में ऐसे चरित्र को जनक दुलारी सीता के रूप में प्रस्तुत किया है जो आधुनिक नारी-जगत् में एक आदर्श चरित्र के रूप में चला आ रहा है। परन्तु, यौनाचार भी जीवन का एक आवश्यक अंग है। इसलिए इसके कुछ दुष्परिणामों के होते हुए भी कोई जाति इसकी उपेक्षा नहीं कर सकती। फिर भी इसके नियंत्रण करने के लिए शास्त्रकारों ने कुछ नियम बनाकर इसको बांधने का सफलतापूर्वक प्रयास किया। परन्तु इसका नैसर्गिक रूप भी समय-समय पर उभरता रहा। इतिहास के गुप्त-युग में इसको वेश्या-भाव का रूप मिला। कामशास्त्र की उत्पत्ति हुई। वेश्या-वास बड़े-बड़े नगरों के आवश्यक भाग माने गए। इस समय एक ओर तो शास्त्रों द्वारा स्थापित सांस्कृतिक जीवन और दूसरी ओर इसका नैसर्गिक रूप था। दोनों में एक अविरत संग्राम चल पड़ा। सम्भवतः उस समय भी यह एक नवीनता और पुरातनता का ही झगड़ा माना गया हो। हां! इसका एक परिणाम जो निकला, वह यह था कि साधारण स्त्रियों को भी आदमियों का भोग-पदार्थ समझा गया। गोसाईं तुलसीदास ने तो यहां तक कह दिया कि—

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

साधारणतः काल-चक्र चलता गया। पिछड़ी हुई जातियां विद्या और श्रम के प्रभाव से उन्नति के सोपान के ऊँचे शिखर पर पहुंचने लगीं। किन्तु, भारत में विदेशी राज्य के कारण विद्या और श्रम का लोप होने लगा जिससे देश के पतन का भी श्रीगणेश हो गया। ऐसी स्थिति में काल ने पलटा खाया। पश्चिम के भौतिक वैभव ने जनता को विद्या के लिए उत्सुक कर दिया। जैसी शिक्षा-प्रणाली सामने आई, उसी में कूदना पड़ा। परन्तु शिक्षा की अब जो पद्धति थी, वह यूरोप के वातावरण में पल्लवित तथा पुष्पित हुई थी। इसलिए, इस विदेशी शिक्षा के प्राप्त करने वालों को अपने रहन-सहन का भी अनुकूलन विदेशी मर्यादा के अनुसार करना आवश्यक था। इससे जीवन का आधार बदला, विचारधारा बदली और इससे भी अधिक 'आचार का शास्त्र' भी बदल गया। अब एक नई सभ्यता का जन्म हुआ और एक नई संस्कृति उभरने लगी, जिससे अब नई और पुरानी में फिर संघर्ष का आरम्भ हो गया। नवीनता सुन्दर और आकर्षक होती है। शास्त्र की विधि अनुसार इसे प्रेम कहा जा सकता है। परन्तु, यह श्रेयस्कर न होती हुई भी अपने उभरते हुए यौवन के भौतिक वैभव से पुरातनता को चकाचौंध कर रही है। आधुनिकता के ऐसे भाव से वेश-भूषा बदली, खानपान बदला और बोल-चाल के ढंग में भी परिवर्तन आया, जिसके प्रभाव से इस समय देश के शिक्षित युवक और युवतियां पूर्णरूप से परस्पर अपनी मातृभाषा में बातचीत भी नहीं कर सकतीं और यदि ऐसा करती हैं, तो अशिक्षित तथा असभ्य ही समझी जाती हैं।

कुछ दिनों की बात है कि यूरोप के गवैये जो बीटल के नाम से प्रसिद्ध थे, एक निराले ढंग की नवीनता को धारण किए भारत आए। इनके बालों की काट निराली थी, गाना बजाना भी अजीब था और विचित्र विद्युतीय सितार भी इनके साथ था। देश के युवक और युवतियां

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इनके दर्शनों के लिए दौड़ पड़ीं। धक्के-मुक्के खाए, परन्तु दर्शनों से वंचित रहना उचित न समझा। एक युवती के पिता ने अपनी बेटी से पूछा कि बेटी क्या देख आई हो? क्या संगीत अच्छा था? इसके उत्तर में उसने कहा कि डैडी आप श्वेत-केशी हैं। आपकी आँखें भी दृष्टिहीन होती जा रही हैं जिसके कारण आपके नेत्र आधुनिकता-रूपी सूर्य की कल्याणकारी तथा तीक्ष्ण रश्मियों के ताप को सहन नहीं कर पाते। पिता यह समझकर कि यह पुरातनता के विरुद्ध नवीनता का झगड़ा है, चुप हो गए।

उपर्युक्त बातचीत से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आज की संस्कृति किसी पुरानी संस्कृति का बिगड़ा हुआ रूप नहीं, अर्थात् आज की अवस्था में काल का चढ़ा हुआ कोई आवरण नहीं, अपितु एक नई विदेशी प्रतिकूल सभ्यता का उद्भव है।

आधुनिक समाजवादियों का भी कहना है कि समाजवाद की स्थापना पुरातनता का पूर्णरूपेण नाश किए बिना नहीं हो सकती।

काल ने राजाओं के राज छीने। अधिनायकों को नीचा दिखाकर छोड़ा। प्रजातन्त्र भी चला, परन्तु यह शीघ्र ही मुरझा-सा गया। लोकतंत्र का अब बोलबाला है। बड़ा आकर्षक है, इसलिए यह प्रसिद्ध होता जा रहा है। परन्तु, इसकी मुठभेड़ अब पार्टी तंत्र से हो गई है, जिसके कारण इसकी भी अब जान जोखिम में दिखाई दे रही है। समाजवाद, साम्यवाद और पूंजीवाद भी एक दूसरे के समक्ष आकर खड़े हो गये हैं। परन्तु, इन सब वादों तथा तंत्रों के बीच की जनता इन सब वादों और तंत्रों से अनभिज्ञ है। यदि वह किसी प्रकार की नवीनता चाहती है, तो केवल एक अच्छे शुद्ध प्रशासन की। कहा भी है कि—

नेता और नायक लड़ा करते हैं किसी राज-पद्धति के निमित्त, लेकिन जो अच्छा है, वह है केवल अच्छा प्रशासनीय कृत्य।

कोई साधारण व्यक्ति अपने वर्तमान से सन्तुष्ट नहीं हुआ करता। उसे भविष्य में आस्था हुआ करती है, लेकिन उस भविष्य में जो आज जैसा नहीं है। क्योंकि परिवर्तन में वह अपनी उत्कृष्टता का कुछ महत्त्व समझता है, इसलिए क्रान्ति के दोषों से अभिज्ञ होता हुआ भी प्राचीन तथा वर्तमान से विद्रोह कर उठता है।

क्रान्ति किसी दूषित धर्म की मलिनता को शान्तिपूर्वक तर्क द्वारा दूर करने की प्रक्रिया नहीं और न ही किसी बिगड़े हुए रीति-रिवाज का संशोधन है। अपितु यह एक भूकंप है, जो एक नए जीवन का उत्पादक हो सकता है। इसलिए, यह आशाजनक भी है। परन्तु, यह क्रूर और भयानक होने के अतिरिक्त इसका परिणाम गत स्थिति से भी बुरा हो सकता है। इसका ऐसा भयावह रूप होने पर भी यह मनुष्यों के नैसर्गिक जीवन का एक आवश्यक अंग है। इसका यदि कोई उपचार है, तो केवल यह कि मनुष्य अपने सांस्कृतिक जीवन को बनाये रखे अर्थात् पुरातनता का शोध करता रहे।

कम्युनिज्म का अर्थ है साम्यवाद। परन्तु इन दोनों में बड़ा अन्तर है। एक नवीन है तो दूसरा अति प्राचीन। एक में व्यष्टि का पूर्ण अभाव है, तो दूसरे में वह स्पष्ट उभरा हुआ है। कम्युनिज्म में व्यक्ति को दबाने के लिए तलवार का प्रयोग जरूरी है, लेकिन साम्यवाद में समष्टि तथा व्यक्ति का जीवन एक स्वाभाविक प्रेरणा है, कारण यह है कि कम्युनिज्म जिसे मार्क्स-लेनिनवाद भी कहते हैं, एक ऐसी राज्य-पद्धति है, जिसमें एक पार्टी का शासन होता है। उदाहरणार्थ, रूस में इस समय कोई २२ करोड़ की जनसंख्या है, परन्तु कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य कोई दो करोड़ हैं और हर प्रकार का उत्पादन और वितरण इसी पार्टी के हाथों से होता है।

साम्यवाद में उत्पादक शक्ति मनुष्यों से अलग होती है। मनुष्य केवल उस शक्ति के सहायक अवश्य हैं। परन्तु वह उत्पादक शक्ति सबके लिए समान रूप से स्थित हुआ करती है। वेद में कहा है कि—

"समानेन वो हविषा जुहोमि"

अर्थात् इस विश्वरूपी यज्ञ में मेरी दी हुई आहुति (खाद्य पदार्थ) सबके लिए समान है। इससे स्पष्ट है, कि हमारे जीवन की आवश्यकताओं का वितरण समान रूप से माना गया है।

जीवन की आवश्यकताओं को उत्पन्न करने के लिए भी वेद का आदेश इस प्रकार है—

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते।
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय॥

ऋ० ५ ६० ५।

(हम में) कोई बड़ा नहीं और न ही कोई छोटा है। सब एक समान भाई हैं। इसलिए, अपने भाग्य को चमकाने के लिए अथवा अपने जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भाइयों के समान मिलकर व्यवहार करो।

प्राचीनता के ऐसे आदर्शों की अवहेलना के कारण ही देश का जनसमुदाय जन्मकृत जातियों में बंट गया। खाद्य पदार्थों की उपज और उनका वितरण भी बिगड़ गया है। जो बुद्धिजीवी देश की उन्नति के लिए अपने कर्तव्यों का पालन केवल प्रशंसा तथा आदरमान के लिए करते थे, अब धन के लिए उन्होंने श्रमिकों के शोषण का व्यवहार आरंभ कर दिया है। वर्ण-व्यवस्था भी जात-पांत का रूप धारण कर जाति का घुन बन गई है।

आधुनिकता ने अब इस क्रूर हानिकारक स्थिति को पुरातनता का नाम दिया। इसका संशोधन कठिन और निष्फल बताया। इसलिए इसकी अंत्येष्टि का ही आदेश सुना दिया। सम्भवतः आप पूछें कि इसका संशोधन क्यों कठिन माना गया है? तो इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि नवीनता के कार्यालय में एक नए प्रकार का साम्यवाद, जिसके प्रवर्तक मार्क्स थे और व्यवहार में लाने वाले महात्मा लेनिन, तैयार हो चुका है, और कुछ देशों की राज्य पद्धति भी बन चुका है। परन्तु इस नवीनता को कार्यान्वित करने के लिए केवल रूस में कोई आठ लाख किसानों को मौत के घाट उतारना पड़ा और अवर्णनीय कष्ट

(शेष पृष्ठ ४३ पर)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(पृष्ठ ८ का शेष)

इसने अंग्रेजी का प्रचार कर उर्दू को जीवन दान देकर भारतीयता का नाश करने, भारतीयता की भावना को विलुप्त करने और जनक्रान्ति का बल क्षीण करने, स्वाधीनता की भावना जागृत न होने पावे इस प्रयत्न में शासन के साथ हार्दिक सहयोग किया है। इसका अपना काम क्या है ? ऋषि दयानन्द का नाम और उनके रचित ग्रन्थ : बस इसकी यह पूंजी है। १८५७ का स्वाधीनता संग्राम पुनः न हो, यह ब्रिटिश लोगों की कोशिश थी। क्योंकि लंदन 'टाइम्स' के अनुसार १८५७ के स्वाधीनता संग्राम में अन्यून १ लाख सामान्य भारतीय जनों ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया था। यह सूचित करता है कि इस्लाम जनता के हृदय से स्वाधीनता-प्रेम को समाप्त नहीं कर सका। यदि अगली लड़ाई हुई तो क्या कम से कम १० लाख लोग प्राण देने को तैयार होंगे ? यह स्थिति उत्पन्न न हो इसका हमने क्या कोई उपाय किया है ?

१८५७ के संग्राम में बंगाली, तमिल और पंजाबी सर्वथा पृथक् रहे थे। अंग्रेजी पठित वर्ग इन प्रान्तों में नेतृत्व करता था। यह ब्रिटिश भक्त था। 'लाल किला' नाम से एक बंगाली ने उपन्यास लिखा है। बंगालियों के इससे अलिप्त रहने को उचित बताया है। इस प्रसंग में एक मनोरंजक घटना का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। ऋषि को केशव चन्द्र सेन ने कोई संस्था स्थापित करने की सलाह दी थी। पर ऋषि अपना विचार कलकत्ता की ब्रिटिश हवा में पूर्ण न कर सके। आर्यसमाज की स्थापना बम्बई में हुई। पर उसकी शताब्दी बम्बई में नहीं, नई दिल्ली में मनाई गई बम्बई से आर्यसमाजने क्यों पलायन किया ? यह एक रहस्य है। प्रधानमंत्री के समर्थन के लिए बम्बई को छोड़ा यह शायद ही कोई कहे। कारण कुछ भी हो, पर जन्म की जगह शताब्दी-महोत्सव न मनाना और घोषित निश्चय को धूल में फेंक देना आर्यसमाज की अक्षमता, अशक्ति और भारतीय चरित्र के विपरीत ही माना जायगा। जिस देश में पराजय को ही विजय माना जाता है, विभाजन को संयुक्तीकरण माना जाता हो और पराजित ही पूजा जाता है उसमें इस पलायन शायद ही माना जाय।

१९ वीं सदी के अन्त में जालन्धर का एक वकील मिशन स्कूल में पढ़ती अपनी पुत्री को आर्यजगत के महान् पुरुषों के असम्मान में कहे जाते हुए शब्द सुन कर उठ बैठा और उसने पुत्री के मामा की सहायता से कन्या महाविद्यालय जालन्धर की स्थापना की। अपने पुत्रों को राम को रामा उच्चारण करते हुए सुनकर वकील ने वकालत ही नहीं छोड़ दी, बल्कि सदा के वास्ते गृह भी त्याग दिया और लाला से महात्मा मुन्शीराम हो गया। इसी महात्मा ने मैकाले को चुनौती दी और शिक्षा का माध्यम हिन्दी को बनाया। सेडलर कमीशन ने इसको सफल परीक्षण बताया।

बंग भंग हुआ, लिबरल नेता सुरेन्द्र नाथ दहाड़ उठा। बंगला के माध्यम से शिक्षा देने के लिए नेशनल कालेज खुला। बंगला के माध्यम से इन्जीनियरिंग की शिक्षा देने के लिए जादवपुर में इंजीनियरिंग कालेज खुला। इसके एक स्नातक डा० डे भारत सरकार के सामुदायिक विकास के मंत्री हुए।

महामना मालवीय जी ने चार्टर और आर्थिक सहायता पाने के लोभ में १९१६ में स्थापित हिन्दू विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम साधारण जनता की मान्यता के विपरीत अंग्रेजी को ही बनाया। १९०५ और १९१६ के मध्य भारत भूमि के प्रति भक्ति का ह्रास इस मात्रा में हो गया।

पहले महायुद्ध के बाद निजाम हैदराबाद ने उस्मानिया यूनिवर्सिटी की स्थापना की। शिक्षा का माध्यम उर्दू को बनाया। निस्संदेह यह मूर्तिमान भारत-विरोध था पर इस्लाम-प्रेम तो था। अंग्रेजी तो नहीं थी। पर भारत-विभाजन की शर्तों पर हुए सत्ता हस्तान्तरण के बाद शासक पार्टी का उर्दू-प्रेम, इस्लाम-प्रेम काफूर हो गया। उर्दू को हटा कर अंग्रेजी को प्रतिष्ठित किया गया। जैसे मध्य भारत और राजस्थान में हिन्दी के सिर पर अंग्रेजी थोपी गई। भारत-भक्ति के विनाश की यह प्रक्रिया जारी है।

विचित्र बात यह है—असहयोग आन्दोलन में स्थापित शिक्षा पीठों में शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषाएं थी, राष्ट्रभाषा नहीं थी। क्योंकि असहयोग आन्दोलन के पुरस्कर्त्ता भारत को एक देश और एक राष्ट्र नहीं मानते थे। ये इस देश को सबकांटिनेंट मानते थे। नदी-स्रोतों, नदी-प्रवाह, खनिज सम्पत्ति, सीमा-सुरक्षा और शासन-सुकरता का विचार करके इन्होंने प्रान्त नहीं बनाये। भारत आर्यजाति के भरतजन ने बसाया है, इस ऐतिहासिक सत्य को ये नहीं मानते थे। हम आर्यजाति की सन्तान हैं, यह भी इनकी मान्यता नहीं थी। अतः इन को इस बात का गौरव नहीं था कि हमारे पूर्वजों ने पाताल लोक बसाया। इसकी स्मृति-रक्षा करना हमारा कर्त्तव्य है।

सनत्कुमार सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यसौ पिंगली च।
सप्त स्वराः सप्त रसातलानि
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥

आर्य जाति विश्व में शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुई थी। एण्डेज पर्वत माला के मध्य खड़ा सूर्य मन्दिर इसका साक्षी है। मैक्सिको-पेरु में साम्राज्य स्थापित करने वाले हमारे पूर्वजों की सन्तान आज भी दाल-चपाती खाती है। विजेता स्पेनियार्डों का आहार (ब्रेड, पेस्टरी आदि) नहीं खाती। क्योंकि उसने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

साम्राज्य अवश्य खोया है, पर हार नहीं मानी। खोया साम्राज्य पुनः पाने की आशा नहीं खोई। क्योंकि भूत भविष्य में परिणत होता है। परन्तु उनके मूल देश ने उनसे विश्वासघात कर भारत-विभाजन खुशी-खुशी माना भारत के भविष्य का घात किया। अंग्रेजी पठित वर्ग की भारत-अभक्ति का यह एक दुःखद परिणाम है। ७५ करोड़ भारतीयों की भविष्य की आशा पर पानी फेर दिया।

आर्यसमाज का इसमें वही भाग है, जो कांग्रेस का है। इसके संस्थापक ने इसके वास्ते विरासत छोड़ी है—

सृष्टि से ले के पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकछत्र राज्य था। अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे।

आर्यसमाज कहता है आर्यजाति नाम की कोई जाति ही नहीं। अतः इस गौरवपूर्ण विरासत पर आर्यसमाज कैसे गौरव कर सकता है? फिर भारत-विभाजकों, भारत-विभाजन को दृढ़ और पुष्ट करने वालों और भारत को विभक्त रखने के समर्थकों का सम्मान करना उनकी सहायता करने में आर्यसमाज को क्या आपत्ति हो सकती है।

गुरुकुल कांगड़ी के कुलगीत की पंक्ति है, थी—

आदित्य ब्रह्मचारी ज्योति जगा गया है।
अनुरूप पुत्र उसका कुल हो यही हमारा॥

इसी गुरुकुल में विज्ञान महाविद्यालय की स्थापना हुई। विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी में दी जाने लगी। गुरुकुल अपने को विश्वविद्यालय कहता है। पर विज्ञान महाविद्यालय पहले आगरा से सम्बद्ध था, अब कानपुर से सम्बद्ध है। क्या यह भारत-भक्ति के अभाव का परिणाम नहीं। इसी विश्वविद्यालय में कभी गाया जाता था—

बादल गर्ज रहे हैं, छाने को है अंधेरा।
बत्ती बने जलेंगे तेरे सपूत माता॥

उसी विश्वविद्यालय पर अंग्रेजी की प्रभुता की पताका फहरा रही है।

आज उर्दू इस देश में जीवित है, तो आर्यसमाज के कारण। सर सिकन्दर हयात खां ने १९२९ में कहा था—यूनियनिस्ट गवर्नमेंट का उर्दू के प्रति विशेष अनुराग नहीं। उर्दू के सब अखबार, प्रताप, मिलाप, वन्देमातरम्, गुरु घण्टाल आदि सब हिन्दुओं के हैं। हमारा तो एकमात्र दैनिक जमींदार है। क्या आज स्थिति बदली हुई है। आर्य गजट आज भी चल रहा है, छप रहा है। डी० ए०-वी० के स्कूलों में १९३१ में संध्या उर्दू में पढ़ाई जाती थी। नई दिल्ली के डी० ए० वी० स्कूल में तो भारत-विभाजन के बाद भी संध्या उर्दू में पढ़ाई जाती थी। यह क्या वेदों के प्रति श्रद्धा का प्रमाण माना जा सकता है।

वेद और भारत भक्ति का अन्योन्य सम्बन्ध है। वेद के प्रति निष्ठा होगी तो भारत भूमि के प्रति भी भक्ति होगी। भारत भूमि के प्रति श्रद्धा होगी तो वेदों के प्रति भी भक्ति होगी। भारत राष्ट्र-भक्ति का प्रतीक है। प्रत्येक व्यक्ति को मातृभूमि के चरणों में प्राणोत्सर्ग करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। पर देश-भाषा व राष्ट्र-भाषा के प्रति श्रद्धा व्यवहारतः प्रकट कर मातृभूमि के प्रति अपनी भक्ति का प्रत्येक व्यक्ति प्रकाश कर सकता है।

स्मिथ, कनिंगहम, टाड, रसल, ग्रियर्सन आदि ने भारत में ३०-३५ साल नौकरी की। इस देश के बारे में लिखा। भारत की रोटी तोड़ते हुए लिखा। पर जो कुछ लिखा अपने देश ग्रेट ब्रिटेन के लिए लिखा—अंग्रेजी में लिखा। एण्ड्रूज और पियरसन ने भी अंग्रेजी में लिखा। इस देश की किसी बोली या भाषा में एक पंक्ति तक नहीं लिखी। इसी देश-भक्ति के बल पर ढाई लाख अंग्रेज इस देश पर लगभग २०० साल तक राज्य करते रहे। उनका अन्त उत्कट भारत-भक्ति ही कर सकती है। क्या आर्यसमाज ने व्यवहारतः भारत-भक्ति जगाई? उर्दू-प्रेम भारत प्रम का परिचायक नहीं माना जा सकता।

प्रेस रजिस्ट्रार की १९७४ की रिपोर्ट में उर्दू-पत्रों के विषय में कहा गया है: उर्दू दैनिकों में 'हिन्द समाचार' जालन्धर का प्रचार १९७३ में ४६१२९ था। और यह सर्वाधिक था। क्या यह आर्यसमाज के नेता का पत्र नहीं है? इसी रिपोर्ट में यह भी बताया गया है—उर्दू का सबसे पुराना पत्र आर्य गजट है। इसका प्रकाशन १८८५ में प्रारम्भ हुआ था। सर्वनाम शून्य, क्रिया विहीन विदेशी भाषा उर्दू को क्या आर्यसमाज ने जीवित नहीं रखा हुआ है। इसी रिपोर्ट में और एक बात कही गई है। यह हिन्दी के गर्व को खर्व करती है।

१९७२ से मासिक पत्रों में सर्वाधिक प्रचार-संख्या कल्याण (गोरखपुर) की नहीं रही। अंग्रेजी के रीडर डाईजस्ट की हो गई है। यथा—

	१९७३	१९७२
रीडर्स डाईजेस्ट	१९३,३८९	१७१,८६०
कल्याण	१५५,५७८	१६५,४५८

हिन्दी की पराजय स्पष्ट है। भारत भक्ति के ह्रास का क्या यह सही पैमाना नहीं?

भैंस ने गौ का बहिष्कार कर दिया। एलोपैथी ने आयुर्वेद के प्राण ले लिये। ज्योतिष भी मरणासन्न है। विज्ञान के नाम पर फलित ज्योतिष की हर साल ६००० अंग्रेजी पुस्तकें आयात होती हैं। यह है अंग्रेजी का प्रभुत्व। भारत-विभाजन इसी के सहारे कायम रह सकता है। शताब्दी समारोह क्या इस स्थिति को मजबूत करने को नहीं हुआ था?

फिर १८७५ और १९७५ में क्या कोई अन्तर आया?

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

—वीर सावरकर

कहानी

तात्या टोपे का एक साथी

अण्डमान द्वीप। उषे! ऐ उषे! अरी आज बोलती क्यों नहीं? घर में क्या कर रही है? इधर आ।

साठ वर्ष से अधिक आयु का पर अभी तक सुदृढ़ शरीर वाला एक पुरुष अपने एक साधारण से खपरैल के घर के बोहारे छिड़के आंगन में खाट पर आकर बैठते-बैठते अपनी छोटी सी पोती को स्नेहपूर्वक बुला रहा था। वह बूढ़ा जब भी इस प्रकार बैठता तब उसके साथी के रूप में एक पान तम्बाकू का बटुआ तथा उसकी पोती उषा और उसका बड़ा भाई १२-१३ वर्ष का मोहन भी आ जाते। वह इन बालकों को कोई कहानी सुनाता और पूर्णतः तल्लीन हो जाता।

वृद्ध के घर के आसपास तीस चालीस ऐसे ही और झोंपड़े थे और इस प्रकार एक गांव बन गया था। था तो यह अण्डमान ही किन्तु दिखाई देता था बम्बई के सागर तटवर्ती कोंकण के किसी गांव के समान। क्योंकि अण्डमान के भी झाड़, ऋतु पक्षी व पैदावार प्रायः कोंकण सरीखी ही है। अन्तर इतना ही है कि कोंकण में जहां अनेक वृक्ष काट कर मनुष्यों ने उसका कायाकल्प सा कर दिया है वहां अण्डमान में स्थिति सर्वथा वैसी नहीं।

सामने के टीले पर से एक व्यक्ति को आते हुए देखकर मोहन ने ताली बजायी और बोला "अप्पा-अप्पा वो देखो, कण्टक बाबू आ रहे हैं।" उषा ने भी भाई का अनुमोदन किया।

कण्टक बाबू घर के आंगन में आ गये और सदैव की भांति मिठाई का एक दौना उन्होंने उषा को पकड़ा दिया और दूसरा मोहन को। अभी कण्टक बाबू चारपाई पर बैठने को ही थे कि अप्पा उन्हें स्थान देने के लिये अपनी जांघ को सिकोड़ कर एक ओर हटने लगे और तभी उनके घुटने में भयंकर दर्द हुआ और वह जोर से कराहे "हाय अम्मा।"

कण्टक ने तुरन्त पूछा क्या हुआ है आप के पैर में? और वह अप्पा के पैर दबाने लगा। अप्पा कराहते हुए बोले "इस घुटने में इसी प्रकार दो दिन से रुक-रुक कर असहनीय दर्द उठता है। कुछ देर तक पैर फैलाकर रखूंगा तो थम जायगा। बहुत पुराना घाव है। कमजोरी बढ़ने से अब फिर कष्ट देने लगा है।

"पुराना घाव कैसा? कण्टक ने प्रश्न किया।

अप्पा बोले "यह घाव सत्तावन के स्वातंत्र्य युद्ध में मुझे लगी एक अंग्रेज की गोली का है। मैं भी विद्रोहियों की ओर से लड़ा था।

"आप भी विद्रोही थे?" कण्टक ने प्रश्न किया। और वृद्ध पुरुष ने अपनी गर्व से तनी गर्दन को स्वीकारोक्ति में तनिक हिलाते हुए कहा "मैं भी वीरवर तात्या टोपे की सेना में एक सिपाही था।।"

"क्या कहा? सेनापति तात्या टोपे! मैंने उनका नाम बाल्यकाल से सुना है। उस महान् सेनापति को प्रत्यक्ष रूप से देखने वाला एक स्वतंत्र योद्धा मेरे समक्ष है यह कल्पना भी मेरे लिए अद्भुत है। अप्पा यदि आपको कोई आशंका न हो तो जो कुछ आपने अपनी आंखों से देखा है मुझे भी सुनाइये।"

"आशंका? बाबा रे! पहिले एक बार मैं तात्या टोपे को पहचानता हूं यदि इतना भी कह दिया होता तो मुझे सामने वाले पेड़ पर टांग दिया होता। उन दिनों हमारे मन में एक भय था और उन स्मृतियों को हमने चित्त के गहरे भूमिगृहों में गाड़ दिया था। एक दो अंग्रेज मेरी आंखों देखी जानकारी पूछने के लिए यहां आये थे पर हमारे मन में जो भय बैठा था उसके कारण कुछ भी खुले दिल से कहते नहीं बनता था। किन्तु अब उसमें छिपाने की बात ही क्या है? उसके कारण जो सजा भोगनी पड़ती है उसे भोगने के लिए ही तो हम यहां अण्डमान में आये हैं। और अब तो हम आजन्म कारावास को पूर्ण करके ही यहां बैठे हैं।"

"अर्थात् ५७ के विद्रोह में संघर्ष करने के कारण ही आपको आजन्म कारावास का दण्ड मिला।"

"उस विद्रोह में अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ते हुए परास्त हुए हम जैसे सैकड़ों विद्रोहियों को आजन्म कारावास भोगने के लिये इन्हीं द्वीपों में भेजा गया। आश्चर्य की बात यह है कि हम यहां की असहनीय विपदाओं को सहकर भी सभी मर नहीं गये। जो विद्रोही सर्व प्रथम यहां भेजे गये थे उन्हीं में से मैं एक हूं। उन विद्रोहियों में चार पांच व्यक्तियों में से सर्वाधिक वृद्ध पर इस दीर्घ जीवन के आनन्द की अपेक्षा जब मेरे सेनापति तात्या टोपे फांसी पर चढ़े… ………"

"तात्या टोपे को फांसी पर चढ़ाया उस समय आप वहीं पर थे?"

"नहीं नहीं। वही शूल तो मन में चुभ रहा है। काले पानी भेजे जाने की अपेक्षा हमें भी अपने सेनापति के साथ फांसी पर चढ़ा दिया गया होता तो हमें अधिक आनन्द मिलता। मृत्यु दण्ड के समय फांसी पर चढ़ते हुए उस महान् सेनापति ने कहा था मैं महाराष्ट्र के राजा का, श्रीमंत नानासाहब पेशवा का सेनापति, अंग्रेजों का प्रजा जन नहीं हूं। अपने राजा की आज्ञा से स्वातन्त्र्य के लिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जूझा हूं अतः मैं विद्रोही नहीं हो सकता। उनके इस वीरोचित कथन पर अंग्रेजों के मन में भी इतनी अधिक आदर भावना जगी कि फांसी के बाद सैकड़ों गोरों ने उस वीर पुरुष के शव के चारों ओर घेरा डाल दिया और अनेक अंग्रेज और फ्रैंच नरनारी उस सेनापति के सिर के बालों की लटें कतर कर ले गए। फ्रांस के समाचार-पत्रों में उन पर दुःखद मृत्यु लेख छपे पर हम उनके सैनिक होते हुए भी उनका अन्तिम दर्शन न पा सके। उस वृद्ध वीर ने यह कहते हुए एक दीर्घ उच्छ्वास छोड़ा और फिर लम्बी कहानी सुनानी आरंभ की। वह बोला "सन् ५७ का क्रान्तिनाद जिस समय दिल्ली, लखनऊ, जगदीशपुर आदि में भड़क उठा, राजे महाराजे, सरकार भूमिधर सैनिक नागरिक सभी उठ खड़े हुए तो हमारी नगरी आरा में भी एक सैनिक जत्था विद्रोह कर उठा और हम सब युवक उसमें सम्मिलित हुए। अपने नगर से हम सीधे कानपुर गये और सेनापति तात्या टोपे की सेना में जा मिले। २० हजार सैनिकों के साथ चढ़कर आये हुए जनरल विधाम को कानपुर की जिस भीषण लड़ाई में सेनापति तात्या टोपे ने पराजित किया था उसमें विद्रोहियों की ओर से लड़ते हुए इस घुटने पर अंग्रेज की गोली लगने से घायल होकर गिर पड़ा और उन लोगों के हाथ में पड़ा। किन्तु अपनी चतुराई से मैं सुरक्षित रूप से अंग्रेजों की छावनी में भेज दिया गया। जब मैं ठीक हो गया तो मैंने पुनः भाग निकलने का प्रयास किया ही था कि एक भारतीय सैनिक ने ही मेरी यह चुगली की कि मैं विद्रोहियों में से एक हूं। और उस समय की अधाधुंध व्यवस्था के अनुसार मुझे भी अन्य व्यक्तियों के साथ आजन्म कारावास का दण्ड देकर इस द्वीप में भेज दिया गया। ऐसे ही हम लोगों ने असह्य कष्टों और घोर यातनाओं को सह कर इस द्वीप को आज मानव विकास के योग्य बना दिया है। यह द्वीप अपने हिन्दुओं का दिनोदिन वर्धमान एक नवीन उपनिवेश हो गया है। यही है हमारे आजन्म कारावास की सार्थकता।"

"आप अब एक बार हिन्दुस्तान में जाकर आने की अनुज्ञा क्यों नहीं मांगते ? अब आप दाखिले वाले स्वतंत्र वर्ग के हैं। ऐसे फ्री पास हाल्डर्स को अनुज्ञा देते हैं न देश जाने की ! किन्हीं प्रकरणों में हिन्दुस्तान अब बहुत सुधर गया है। उसे आपको एक बार देखना चाहिए।"

क्या देखना है अब वहां ? जैसे यह काले पानी का द्वीप दिनोदिन समृद्ध होता जा रहा है उसी तरह तुम कहते हो हिन्दुस्तान भी सुधर रहा है। दाखिले वाले नियम हम पर लागू नहीं होते यह कहते हुए वृद्ध ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा।

मैंने व्यर्थ ही उसे दुःखित किया ऐसा समझ कर कण्टक बाबू कहने लगे "चाहे कुछ हो देव तो न्याय का पृष्ठ रक्षक है। न्याय की ही जीत अन्त में होती है।"

तभी वृद्ध बोल उठा "जय और पराजय का सम्बन्ध पराक्रम से है। यह ध्यान रखो। पराक्रम ही जय का मन्त्र है।"

ज्योति भरो !

अन्तर में ज्योति भरो।
महाप्राण, अणु-अणु के त्राता, जग कल्याण करो।
अन्तर में ज्योति भरो ।।

तुम अविनाशी, घट-घट वासी, दीन पुकार सुनो।
ज्ञान दान दे, सविता ! प्रेरक ! शाश्वत दीप बनो ।।
मूढ़ मनुज की चरम साधना, विस्तृत हो कल्याणी,
धरती अंबर पर गूंजे प्रभु एक तुम्हारी वाणी।
तुम जीवन वीणा के वादक, जय झंकार करो।
अन्तर में ज्योति भरो।

हरो घटा अज्ञान तिमिर की, शुभ प्रकाश छितराओ,
संसृति की कोमल कलियों में, सुरभि नयी महकाओ,
ओ विराट्, गतिबल के प्रहरी, जन-जन को हरषाओ,
महानाश का अन्त करो अब, मानवता लहराओ।
मिटे न आशा, प्राण-पिपासा, मधुमय ज्ञान भरो।
अन्तर में ज्योति भरो।।

शक्ति भरो वह, संबल मन के कलुष मिटाएं।
तुझ से लेकर गरिमा तेरी, गुण आगर बन जाएं।
झुकें नहीं हम, रुकें नहीं हम, तेरा पथ विस्तारें।
तेरे गीत गुंजाएं जो भर, तेरे मन्त्र प्रचारें।।
तुझ से मिलकर पा लें सब कुछ, इच्छा यह पूर्ण करो।
अन्तर में ज्योति भरो।।

—भारतेन्द्र नाथ

घर को स्वर्ग बनाने के लिए
"धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम"
पढ़िए। मूल्य १ रु० ५० पै०

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रोहतक के शताब्दी समारोह पर चतुर्वेद पारायण महायज्ञ का आयोजन

हरिद्वार। आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा की अन्तरंग सभा की एक आवश्यक बैठक गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार के वार्षिक उत्सव के शुभावसर पर सभा के उपप्रधान श्री रघुवीर सिंह शास्त्री के सभापतित्व में वेदमन्दिर में हुई, जिस में हरयाणा आर्य समाज स्थापना शताब्दी समारोह (जो २८, २९, ३० मई रोहतक में हो रहा है) के कार्यक्रम पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया। स्वामी ओमानन्द सरस्वती के प्रस्ताव पर शताब्दी समारोह से पूर्व १६ मई से दयानन्द मठ रोहतक की नवनिर्मित यज्ञशाला में चारों वेदों से महायज्ञ का आयोजन किया गया है। इस महायज्ञ के ब्रह्मा आर्य समाज के नवयुवक विद्वान् आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री (दयानन्द ब्राह्म विद्यालय हिसार) और संयोजक पं० विद्याव्रत शास्त्री (शिवाजी नगर रोहतक) को नियुक्त किया गया है। यज्ञ के १२ वेदपाठी मनोनीत किये गये हैं। इसी प्रकार हरयाणा के प्रसिद्ध वैद्य श्री किशनलाल (प्रधान आर्य समाज आहूलाना, सोनीपत), डा० सुखदयाल निझावन, श्री शिवचरण दास जी चावला (माडल टाऊन, रोहतक), श्री जयदेव आर्य (हिसार), श्री लालमन आर्य (हिसार) आदि महानुभावों ने यजमान बनना स्वीकार कर लिया है। स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने यज्ञप्रेमियों से अपील की है कि इस ऐतिहासिक महायज्ञ को सफल बनाने के लिए उदारता पूर्वक धन की सहायता करें और जो महानुभाव यजमान बनना चाहते हों, वे अपने नाम सभा कार्यालय (दयानन्द मठ, रोहतक) में भेज देवें।

अन्तरंग सभा ने यह भी निर्णय किया कि आर्य समाज के आन्दोलनों से सम्बन्ध रखने वाले ऐतिहासिक स्थानों यथा रेवाड़ी (ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित गोशाला) सम्मालखा, कुण्डली (बूचड़खाने बन्द करवाना) मोठ (भक्त फूलसिंह जी द्वारा अनशन); लोहारू (स्वामी स्वतंत्रानन्द जी द्वारा सत्याग्रह), बहू अकबरपुर (हिन्दी रक्षा आन्दोलन का ऐतिहासिक स्थान) की आर्य नेताओं द्वारा २३ मई रविवार को पदयात्रायें की जावें। इस अवसर पर छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने के लिये पिछड़ी जातियों में जलपान का आयोजन किया जावे और रात्रि को सार्वजनिक सभा का प्रबन्ध किया जावे।

अन्तरंग सभा ने एक अन्य प्रस्ताव द्वारा हरयाणा राज्य के सीमावर्ती राज्य पंजाब, हिमाचल, राजस्थान, दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश की आर्य जनता को भी हरयाणा आर्यसमाज शताब्दी समारोह में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया है। शताब्दी समारोह पर विविध सम्मेलनों का आयोजन किया गया है, जिन पर आर्यजगत् के निम्नलिखित विद्वान् नेताओं के पधारने की स्वीकृति प्राप्त हो गई है :—

श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री पूर्व संसद् सदस्य, ला० रामगोपाल शालवाले प्रधान सार्वदेशिक सभा, डा० वेदीराम शर्मा, अध्यक्ष हिन्दी विभाग दयानन्द कालेज जालन्धर, बहन कमला आर्या प्रधान, स्त्री आर्य समाज पंजाब, डा० गणेशदास मन्त्री आर्य प्रादेशिक सभा हरयाणा श्री जगन्नाथ प्रधान आर्य प्रादेशिक सभा हरयाणा, श्री वीरेन्द्र मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, श्री पृथ्वी सिंह आजाद एम०एल०ए० प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, पं० शान्तिप्रकाश शास्त्रार्थ महारथी, चौ० हीरासिंह कार्यकारी पार्षद दिल्ली, आचार्य प्रियव्रत पूर्व उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, पं० हरपाल सिंह शास्त्री, भवीसा (जिला मुजफ्फरनगर), स्वामी सत्यप्रकाश पूर्व अध्यक्ष विज्ञान विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय पं० शिवकुमार शास्त्री संसद सदस्य प्रिंसिपल महेन्द्र प्रताप शास्त्री कुलपति कन्या गुरुकुल हाथरस (उ०प्र०), पं० ओमप्रकाश शास्त्री शास्त्रार्थ महारथी खतौली (उ० प्र०) स्वामी आत्मानन्द तीर्थ खरखोदा (उ०प्र०), स्वामी सोमानन्द सरस्वती (पूर्व पं० नरेन्द्र हैदराबाद), स्वामी सच्चिदानन्द योगी हरिद्वार, प्रो० रतनसिंह एम०ए० गाजियाबाद, पं० प्रकाशवीर शास्त्री संसद सदस्य, चौ० नत्थासिंह भजनोप्रदेशक बदरपुर (करनाल), श्री वीरेन्द्र वीर भजनोपदेशक शामली (उ०प्र०), श्री बेगराज भजनोपदेशक मुड़िया (जिला मेरठ) पं० बलराज आर्य संगीत रत्न फिल्लौर (पंजाब) और पं० ओमप्रकाश वर्मा भजनोपदेशक यमुनानगर। □

शुभ विवाह

बीकानेर, पंजाब के चोपड़ा परिवार की कुमारी सुधा का पाणिग्रहण बंगाली परिवार के चित्तरंजन बनर्जी के साथ यहां १४ अप्रैल को सादगी के साथ सम्पन्न हुआ। आर्यसमाज दयानन्द मार्ग के भूतपूर्व मन्त्री श्री रणजीत सिंह ने संस्कार कराया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बरात में केवल पांच बाराती थे। दहेज न दिया गया न लिया गया।

आदर्श अन्तंजातीय विवाह

आर्यसमाज (काकड़वाड़ी) बम्बई का वार्षिक महोत्सव सम्पन्न

बम्बई महर्षि दयानन्द द्वारा सर्व प्रथम स्थापित आर्य समाज (काकड़वाड़ी) का १०१ वां वार्षिक महोत्सव चौपाटी मैदान में बड़ी धूमधाम के साथ मनाया गया जिसमें आर्यजगत् के प्रसिद्ध सन्यासी, विद्वान् भजनोपदेशक और नेताबड़ी संख्या पधारें।

वैदिक धर्म, आर्य समाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती के सिद्धान्तों, मन्तव्यों और सार्वभौम कार्यो का दिग्दर्शन कराया गया और बताया गया कि महर्षि दयानन्द के बताये वैदिक सिद्धान्तों के सामने भूगोल के मतमतान्तरों के अवैदिक सिद्धान्त टिक नहीं सकते और वक्ताओं ने कहा कि जब तक लोग वैदिक धर्म को नहीं अपनायेंगे, तब तक विश्व में शान्ति नहीं होगी और नहीं मानवता का कल्याण होगा।

अध्यक्षपद से बम्बई नगरपालिका के मेयर श्री नानालालजी मेहता ने विशाल सभा को बताया कि आर्यसमाज एक धार्मिक संस्था है, परन्तु साथ ही साथ वह एक राष्ट्रीय संस्था है।

महाराष्ट्र राज्य के भू०पू० मन्त्री श्री भानुशंकर याज्ञिक ने कहा कि जनसम्पर्क जनता का सहयोग प्राप्त करने का समय अब आ गया है।

पं० श्री आनन्दप्रियजी ने कहा कि गुजरात राज्य में पौराणिकता बढ़ रही है। "हरिजनोद्धार और शुद्धि कार्य नितान्त आवश्यक है।"

आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री ने कहा कि देवियों में तीन शक्तियां-ज्ञान, सम्पत्ति (साधन) और तापस (बल) है और उनके समन्वय से ही सन्तुलन रह सकता है। उन्होंने यह भी बताया कि वेदों में गणितादि अनेक विद्यायें है। स्व० शिवकर बापुजी तलपदेने वेदों के आधार पर यहीं चौपाटीपर विमान बनाकर उड़ाया था।

पं० वेदमित्र ठाकुर ने कहा किसी भी विद्वान् के वेदभाष्य की तुलना में महर्षि दयानन्द का वेद भाष्य सर्वोपरि है। वेद की विशिष्टता यह है कि किसी भी अन्य मतमतान्तर की अपेक्षा आप किसी भी विषय को लेकर वेदको उठाइये, वेद उसका सच्चा प्रामाणिक और व्यवहारिक स्वरूप बताता है! वेदों में अनेक विद्यायें भरी हुई हैं जो अन्य तथा कथित धर्मग्रन्थों में नहीं है।

स्वा० विशुद्धानन्द सरस्वती ने प्रवर्तित सम्प्रदायों से वैदिकधर्म की तुलना की और बताया कि वैदिक धर्म श्रेष्ठ है।

उत्सव के अन्तिम दिन यज्ञ के पश्चात् महाशय लालचन्द चोपड़ा (अब श्री देवमुनिजी) का वानप्रस्थाश्रम प्रवेश विधि संस्कार पं० श्री दयाशंकरजी शर्मा ने कराया और दीक्षा संस्कार स्वा० विशुद्धानन्द सरस्वती स्वा० दीक्षानन्द ने आशीर्वाद दिया।

इन चारों दिन प्रातः समाज मन्दिर में यज्ञ, शंका समाधानादि और सायं चौपाटी मैदान में व्याख्यानों के अतिरिक्त श्री सत्यापाल पथिक, पं० जगदीशचन्द्र प्रवासी सुश्री उर्मिला मिश्र और सुश्री प्रतिभा पंडित केगायन और ऋषि कथा ने जनता को प्रभावित किया।

वेद भाष्य की चतुर्थ जिल्द मंगाने में शीघ्रता न करें

वेद भाष्य का चतुर्थ खंड भी छप कर सारा प्रकाशन पूर्ण हो चुका है। १ मार्च १९७६ से वितरण आरम्भ है। और अब तक २००० प्रतियां वितरित हो चुकी हैं।

१५५०८ व्यक्तियों को यह खंड देने में कम से कम १८ वर्ष लगेंगे। जिल्दें एक माह में एक हजार से अधिक बननी संभव नहीं।

हम कृपालु सदस्यों से आग्रह करेंगे कि चतुर्थ खंड मंगाने में शीघ्रता न करें, धीरज रखें हम स्वयं आप तक शीघ्र से शीघ्र, पहुंचाने हेतु उत्सुक हैं—

—मन्त्री

वैवाहिक विज्ञापन

१. २४ वर्षीय आर्यपरिवार के सुसम्पन्न आँटोमाबाइल इन्जीनियर सुन्दर स्वस्थ युवा सुन्दर सुशील सुशिक्षित वधू चाहिए। वैदिक विचारधारा के अन्तर्जातीय या अन्तर्देशीय सम्बन्ध भी विचारणीय।

२. २३ वर्षीय, आर्य परिवार के सुसम्पन्न सुन्दर, स्वावलम्बी (इन्टर पास) युवक के लिए सुन्दर सुशील गृहकार्य दक्षकन्या चाहिए।

—मन्त्री, आर्य समाज, नरकटियागंज,चम्पारण्य (४०)

सत्यार्थ प्रकाश

२२५)—३००)—५००

३१००)—६१००) रु० सैकड़ा के मंगाएं :

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सृष्टि उत्पत्तिकाल समस्या—

श्री उमाकान्त शास्त्री जी सचिव श्री वैद्यनाथ संस्कृत सेवक संघ : (बिहार राज्य) कार्यालय-वैद्यनाथ धाम (देवघर) ने १६-४-७६ को पं० भारतेन्द्र नाथ जी दयानन्द संस्थान दिल्ली को निम्नलिखित पत्र भेजा है—

कृपया अपने मासिक वा साप्ताहिक 'जन ज्ञान' के माध्यम से इस सृष्टि संवत् के निर्धारण का क्या आधार है ? यदि कोई ठोस आधार है तो विभिन्नता क्यों प्रचलित है ?

१. सार्वदेशिक सभा से प्रचारित—

१९७२९४९०७७ सृष्टि संवत्

२. दयानन्द संस्थान की पत्रिकाओं में—

१९६०८५३०७७ सृष्टि संवत्

३. पंचाङ्ग में अंकित—

१९५५८८५०७७ सृष्टि संवत्

इन तीनों में कौन उचित हैं ?

समस्या का समाधान—कुछ लोग १४ मनवन्तरों में १५ संधिकाल दिखाते हैं । उनकी गणना १९७२९४९०७७ बनती है । पंचाङ्ग वाले पृथक् गणना करते हैं उनके मत में १९५५८८५०७७ बनती है ।

परन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखा है—

१. जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ ?

उत्तर—आठ करोड़ कई लाख और कई सहस्र जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश में हुए हैं । इसको ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेदोत्पत्ति प्रकरण में देखें । वहां लिखा है—१९६०८५२९७६, यह विक्रमी संवत् १९३३ बनते हैं । अब २०३३ है अतः शेष जोड़ें तो १ ९६०८५३०७७ बन जाते हैं ।

२. दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह प्रकाशक आर्य साहित्य-प्रचार ट्रस्ट खारी बावली दिल्ली मेला चान्दपुर (सत्य धर्म विचार) के ९२ पृष्ठ पर लिखा है १९६०८५९७६ इसमें उक्त समय की अब तक की गणना करें तो १९६०८५३०७७ बनते हैं । यही काल गणना पृ १०५ पर बनती है । यही कालगणना पृष्ठ २६५ और पृष्ठ २७१ पर उदयपुर में बनती है । अर्थात् ऋषि दयानन्द के मतानुसार वर्तमान में १९६०८५३०७७ का वर्ष चल रहा है । यही दयानन्द सन्देश मासिक-पत्र देहली तथा सुधारक मासिक पत्र गुरुकुल झज्जर (रोहतक) के अनुसार कालगणना है । अतः यही सर्वथा उचित है । ऋषि सन्धि १५ का काल नहीं मानते । अतः 'जन ज्ञान" मासिक और साप्ताहिक की गणना सही है ।

निवेदक—विनीत जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली-६ द्वारा श्री पं० भारतेन्द्र नाथ जी साहित्यालङ्कार दयानन्द संस्थान, हरध्यान सिंह मार्ग, करौल बाग, नई दिल्ली-५

(क) (अग्नि क्या करता है।)

"विद्युत रूप अग्नि के आश्रय में ३०३४२ तत्त्व सर्वत्र अभिव्याप्त हैं"

(ख) त्रीणिशता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्य्यन् । औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥

—ऋग्वेद मण्डल ३, सूक्त ९, मन्त्र ९ ॥

(ग) पदपाठ :—त्रीणि । शता । त्री । सहस्राणि । अग्निम् । त्रिंशत् । च । देवाः । नव । च । असपर्य्यन् । औक्षन् । घृतैः । अस्तृणन् । बर्हिः । अस्मै । आत् । इत् । होतारम् । नि । असादयन्त ॥

(घ) पदार्थ—(त्रीणि) (शता) शतानि (त्री) त्रीणि (सहस्राणि) तत्त्वानि (अग्निम्) पावकम् (त्रिंशत्) (च) त्रयश्च (देवाः) पृथिव्यादयः (नव) हिरण्यगर्भादयः (च) (असपर्यन्) सेवन्ते (औक्षन्) सिञ्चन्ति (घृतैः) उदकैः (अस्तृणन्) (बर्हिः) (अस्मै) (आत्) आनन्तर्ये (इत्) एव (होतारम्) आदातारम् (नि) (असादयन्त) कार्य्येषु-नियोजयत ॥

(ङ) अन्वयः—हे विद्वांसो यमग्निं त्रीणि शता त्री सहस्राणि त्रिंशच्च नव च देवा असपर्यन् घृतैरौक्षन्नस्मै बर्हिरस्तृणन्तमाद्धोतारमिदेव यूयं न्यसादयन्त ॥

भावार्थ :—हे मनुष्या भवन्तो यस्याश्रये त्रयस्त्रिंशत-सहस्राणि त्रीणि शतानि द्विचत्वारिंशच्च तत्त्वानि सन्ति च एकः सर्वान् विद्युद्रूपेण व्याप्नोति तेनाग्निना सर्वाणि कार्य्याणि साध्नुवन्तु ॥

भाषा पदार्थ—हे विद्वान् लोगो जिस (अग्निम्) अग्नि को (त्रीणि) तीन (शता) सैकड़े (त्री) तीन (सहस्राणि) हजार तत्त्व (च) और (त्रिंशत्) पृथिवी आदि तीस तथा तीन तैंतीस (च) और (नव) नौ हिरण्यगर्भादि (देवाः) दिव्य गुण वाले पदार्थ (असपर्यन्) सेवन करते (घृतैः) जलों से (औक्षन्) सींचते (अस्मै) इस अग्नि के लिये (बर्हिः) पदार्थ वृद्धि का (अस्तृणन्) विस्तार करते उस (आत्) विद्या प्राप्ति के पश्चात् (होतारम्) आदर करने वाले कार्य्य साधक (इत्) को ही तुम लोग (नि, असाधयन्त) कार्य्यों में निरन्तर युक्त करो ॥

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भाषा भावार्थ—हे मनुष्यो जिस के आश्रय में तैंतीस हजार तीन सौ बयालीस तत्त्व हैं जो एक सब को विद्युत् रूप से व्याप्त है उस अग्नि के आश्रय से आप लोग सब कार्य्य सिद्ध करो ।।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का ऋग्वेद भाष्य

महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज ने ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका के अन्त में दो श्लोक लिखे हैं—

वेदार्थाभिप्रायप्रकाशप्रणसुगमिका कामदा मान्यहेतुः ।
संक्षेपाद्भूमिरेयं विमलविविनिधिः सत्यप्रकाशार्थयुक्ता ।।
सम्पूर्णाकार्य्येदं भवति सुरुचि यन्मन्त्रभाष्यं मयातः ।
पश्चादीशानभक्त्या सुमतिसहितया तन्यते सुप्रमाणम् ।।१।।

मन्त्रार्थभूमिका ह्यत्र मन्त्रस्तस्य पदानि च ।
पदार्थान्वयभावार्थाः क्रमाद्बोध्या विचक्षणैः ।।२।।

यह भूमिका जो चारों वेदों के प्रयोजन अर्थात् वेद किस लिये और किस ने बनाये, उनमें क्या-क्या विषय हैं इत्यादि बातें को अच्छी प्रकार प्राप्ति कराने वाली है। इस को जो लोग ठीक-ठीक परिश्रम से पढ़ें और विचारेंगे उनका व्यवहार और परमार्थ का प्रकाश, संसार में मान्य और कामना सिद्धि अवश्य होगी। इस प्रकार जो निर्मल विषयों के विधान का कोष अर्थात् खजाना और सत्य शास्त्रों के प्रमाणों से युक्त जो भूमिका है इसको मैं ने संक्षेप से पूर्ण किया। अब इस के आगे जो उत्तम बुद्धि देने वाली परमात्मा की भक्ति में अपनी बुद्धि को दृढ़ कर के प्रीति को बढ़ाने वाले मन्त्र भाष्य का प्रमाण पूर्वक विस्तार करता हूं ।।१।।

इस मन्त्र भाष्य में इस प्रकार का क्रम रहेगा कि प्रथम तो मन्त्र में परमेश्वर ने जिस काम का प्रकाश किया है फिर मूल मन्त्र। उसका पदच्छेद। क्रम से प्रमाण सहित मन्त्र के पदों का अर्थ। अन्वय अर्थात् पदों की सम्बन्धपूर्वक योजना और छोटा भावार्थ अर्थात् जो मन्त्र का प्रयोजन है इस क्रम से मन्त्र भाष्य बनाया जाता है ।।२।।

ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करने से पूर्व महर्षि ने लिखा है—

"भाषार्थ—अब मैं इस प्रकार से विद्या के आनन्द को देने वाली चारों वेदों की भूमिका को समाप्त और जगदीश को अच्छी प्रकार प्रणाम करके सम्वत् १९३४ मार्ग शुक्ल ६ भौमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान को देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूं ।।१।।

महर्षि दयानन्द द्वारा विशिष्ट पदों और उनके अर्थों पर विचार

१. पदार्थ में (देवाः) पद का अर्थ 'पृथिव्यादयः' किया है यह सामान्य बोध को सूचित करता है।

२. पदार्थ में (नव) पद का अर्थ 'हिरण्यगर्भादयः' दिया है। यह अर्थ पृथिवी आदि के अर्थ से उत्कृष्ट अर्थ का द्योतक है।

३. अन्वय में हे 'विद्वांस' पद का प्रयोग किया है जो विद्या की उच्च व्यवस्था का बोधक है। इस उच्च बोधक अवस्था की प्राप्ति आप्त विद्वान् ही कर सकते हैं।

४. भावार्थ में हे 'मनुष्याः' पद का सम्बोधन प्रयुक्त किया है। इससे प्रकट होता है कि मनुष्य मात्र भी सामान्य रूप से अग्नि के सामान्य रूप से विचार करें।

५. भाषा पदार्थ में नव संख्यावाची शब्द के साथ हिरण्यगर्भादि पद के सहयोग में (देवाः) दिव्य गुण वाले पदार्थों का प्रयोग हुआ है। इस प्रयोग से सुप्रकट है कि 'देवाः' पद में उच्चतर ज्ञान का प्रकाश होता है।

६. भाषा पदार्थ में पृथिवी आदि के साथ सामान्य संख्या' का स्थान मिलता है।

७. भाषा भावार्थ में विद्युत् रूप का मूलकारण अग्नि तत्त्व दिया हुआ है जिसके आश्रय उपर्युक्त ३०९४२ तत्त्व रहते हैं।

लेख के प्रथम पृष्ठ पर (क)—[अग्नि क्या करता है] यह मन्त्र का मूल भूमिका अर्थ ऋषि ने दिया है। (ख) संख्या में मूल मन्त्र सहिता रूप में मिलता अर्थात् इस रूप में परमेश्वर द्वारा चार वेद मन्त्र प्राप्त कर्त्ता अग्नि वायु, आदित्य और अङ्गिरा ऋषियों को परमेश्वर का ज्ञान उनके हृदयों में पृथक्-पृथक् आदि सृष्टि में प्रति-कल्प में दिया जाता है। ये वेद मन्त्र नित्य, अनादि और अनन्त रूप में सदा बने रहते हैं। (ग) पद पाठ में उन ऋषियों का प्रयोग होता है जो कि मूल-मन्त्रों के सर्व प्रथम पदशः विभाग करते हैं। यह पद विभाग कर्त्ता होते हैं। ये अनित्य हैं और अर्थ सहायक में आवश्यक होते हैं। पद विभाग कर्ता ऋषि लोग मूल संहिताओं के प्रथम व्याख्याता होते हैं। (घ) पदार्थ में वेद भाष्यकार अपनी मेधा बुद्धि के बल पर जो अर्थ प्रकाशित करते हैं। उन महामानव ऋषियों को वेदमन्त्रार्थद्रष्टा कहा जाता है इनके पवित्र नाम प्रत्येक मन्त्र के आदि में उपर दिये हुए हैं। (ङ) वर्तमान काल की संस्कृत भाषा के अनुसार मूल मन्त्रों के अर्थों को अर्थ क्रिया के सम्बन्ध का नियोजन किया जाता है। (च) संस्कृत भावार्थ में मन्त्रों का प्रयोजन कहा जाता है। (च) संस्कृत भावार्थ में मनुष्यों को मन्त्रार्थों को कार्यसिद्धि में प्रयुक्त करने का विधान किया जाता है तथा मूलपदार्थ द्वारा मन्त्र के अर्थ का साक्षात् किया जाता है।

महर्षि दयानन्द स्वयं वेदमन्त्रार्थद्रष्टा, परम योगी, पूर्ण तत्त्वज्ञ और महावैज्ञानिक थे, अतः उन्होंने विद्युत रूप के मूल कारण नित्य अग्नि तत्त्व की पूर्ण रूप से व्याख्या की है। इस को हमने सार रूप में "मूल मन्त्र से ऊपर आदि में "विद्युत् रूप अग्नि के आश्रय में ३०९४२ तत्त्व सर्वत्र अभिव्याप्त हैं।" लिख दिया है। इस गणना को तत्त्वज्ञ और वैज्ञानिक ही कह सकते हैं। आशा है विद्वद्वर वेद का स्वाध्याय करने वाले सज्जन हमारे सार पर विचार करके कृतार्थ करेंगे।।

विनीत—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री तर्कवाचस्पति
सम्राट् प्रेस, पहाड़ी धीरज, दिल्ली-६।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ने पड़े, जिन की छत्रछाया में वहाँ की जन[illegible] को ..यिक, नैतिक तथा सामाजिक उन्नति न होने के समान है। इस समय रूस में केवल दो तिहाई एकड़ भूमि किसी एक कृषक के स्वामित्व में है, शेष पर सामूहिक रूप से कृषि होती है। परन्तु आप यह सुनकर हैरान होंगे कि अनाजादि की जितनी उत्पत्ति इस निजी जमीन में होती है, उतनी सारी सार्वजनिक भूमि में नहीं। वास्तव में कोई भी चाहे वह कृषक हो या अन्य श्रमिक, जितना अपने लिए कर सकता है, उतना दूसरों के लिए नहीं, इसीलिए वेद ने कहा कि हे मनुष्य—

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर।

अर्थात् तेरे सैकड़ों हाथ उत्पादन के लिए हों और हजारों बिखेरने या वितरण के लिये। संक्षेपतः हम कह सकते हैं कि प्राचीन साम्यवाद व्यक्ति का एक धार्मिक जीवन था और आधुनिक साम्यवाद राज्य पद्धति है।

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार मनुष्य का आगमन इस भूमि पर नैसर्गिक रूप में हुआ और इसका पशुस्वभाव चिरकाल तक रहा। नृवंश-विज्ञान के विशेषज्ञ तो यह भी मानते हैं कि मनुष्य का सांस्कृतिक जीवन तो एक आधुनिकता है। कल की-सी बात है।

परन्तु भारतीय दार्शनिकों का कहना है कि मनुष्य के शरीर में एक विकासशील बुद्धि है, बाह्य दृश्यों से यह शीघ्र ही प्रभावित होकर विकसित हो जाती है। इसलिए इसके नैसर्गिक और कृत्रिम जीवन में कोई बड़ा अंतराल नहीं हो सकता। आधुनिक मानव की एक परिभाषा अग्नि के प्रयोग को करने वाला है अर्थात् जिस समय मनुष्य ने अग्नि को उत्पन्न कर लिया होगा उसी समय से ही यह आधुनिक माना जा सकता है। परन्तु देखा गया है कि वनों को बिजली अथवा घर्षण से प्रायः आग लग जाया करती है। इसलिए आदिम मनुष्य ने आरम्भ में ऐसे दृश्यों को देखकर शीघ्र अग्नि के लाभदायक तथा हानिकारक गुणों को समझकर इसका प्रयोग भी आरम्भ कर दिया होगा।

इसके अतिरिक्त, मनुष्य के शरीर में एक और भी उपकरण है जिसे मन कहते हैं, और जिसके संबन्ध में श्रुति में कहा गया है—

'यस्मिन्नृचः सामयजूँषि।

अर्थात् जिसमें ऋग्वेद और यजुर्वेद समाए हुए हैं। ऐसे उपकरणों से जीवन के कुछ आवश्यक भेदों को समझकर एक सांस्कृतिक जीवन का उदय हो जाना कोई कठिन समस्या नहीं।

किसी देश की संस्कृति का आधार उस देश के रहने वालों का सामूहिक रूप से जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण है। मैं क्या हूं, मेरा क्या कर्तव्य है, मेरा नैतिक उद्देश्य क्या है? ऐसे प्रश्नों के उत्तर पर ही किसी जाति या समाज की संस्कृति का विकास होता है। क्या मनुष्य का उद्भव बन्दरों के रूप में हुआ? क्या डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य के देह की उत्पत्ति हुई? इनका उत्तर यदि हां में है, तो यह एक आधुनिकता है। परन्तु इस सिद्धान्त का आधार है जीवन का संग्राम रूप, जिसमें पुष्टतम जीवन का नियम वर्तमान है। जीवन के ऐसे दृष्टिकोण के कारण ही विज्ञान के आविष्कारों द्वारा दूर-दूर के देशों का[illegible] आर को बलवान् बनाने के लिए अति विध्वंसक सर्वनाशक युद्धोपकरणों को जन्म दे रहा है, ताकि जीवन के संग्राम में मैं अति जीवन प्राप्त करता रहूं। ऐसे सिद्धान्त के कारण ही हर जाति दूसरे का नाश चाहती है, जिससे सारी भूमि पर एक कोलाहल-सा मच गया है। परन्तु प्राचीनता की शिक्षा है कि हे प्राणी, यह ठीक है कि जगत् के संग्राम में बलवत्तम जीवन का सिद्धान्त वर्तमान है। इसलिए यह तुम्हारा कर्तव्य या धर्म है कि तुम दुर्बल और पतित व्यक्तियों तथा जातियों को इनके उच्च जीवन के लिए सबल बनो। इनके लिए तुम त्याग से जीना सीखो। इसी में ही मुक्ति है—

तेन त्यक्तेन भुंजीथा।
मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। यजु० ४०·१ ◆

(शेष पृष्ठ १० का)

व्याख्या की थी। सिंहल के यात्रियों के लिए विशेष रूप से नागार्जुनकोंडा में सिंहल-विहार का निर्माण किया। आचार्य नागार्जुन के बाद, आचार्य-पीठ पर बैठने वाले आर्य देव को सिंहल के राजा ओहरितिस्साने अपने देश में बुलाकर सम्मानित किया।

मध्य एशिया—

संस्कृति का प्रभाव मध्य-एशिया तक फैलाना एक अन्य विशेषता है नागार्जुनकोंडा में मिले हुए शिला लेखों से पता चलता है कि आंध्र प्रान्त से भिक्षु धर्म प्रचार के लिए कश्मीर आदि देशों में भी गये थे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि आचार्य नागार्जुन वैद्यकशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे और वे चीन और तिब्बत भी गये थे। उनके अनुसंधानों के फलस्वरूप बनी नेत्रांजन आदि दवाएं आज भी चीन में इस्तेमाल होती हैं। हाल ही में नागार्जुनकोंडा से निकली पुरावस्तुओं के आधार पर यह साबित हो जाता है कि वहां रसायनशास्त्र का अनुसंधान भी हुआ था। ईसा की सातवीं शताब्दी में श्रीपर्वत के दर्शन करने वाले युवांगच्यांग ने भी कहा था कि उस विहार के रहने वाले औषधियों से प्रजा की चिकित्सा करते थे। कहते हैं कि जापान के 'होरियुजी' मन्दिर के भित्तिचित्रों और अजंता के भित्तिचित्रों में बहुत कुछ समानता है। तिब्बत के इतिहासकार लामा तारानाथ (ईसा की आठवीं शताब्दी) ने कहा था कि लासा विश्वविद्यालय अमरावती—धान्यकटक विद्यालय के नमूने पर निर्मित हुआ था। कहते हैं कि उस विश्वविद्यालय में १७०० छात्र पढ़ते थे।

ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी में विजयनगर पर शासन करने वाले इम्मडि देवरायलु को बर्मा के पेगू और टेनाशरिम् राज्य कर देते थे। यही बात फारसी यात्री अब्दुल रजाक ने भी कही थी। देवरायलु के समसामयिक और प्रसिद्ध महाकवि श्रीनाथ ने अपने 'हरविलास' नामक काव्य में कोंडवीड राज्य के व्यापारी 'चामिसेट्टि' के व्यापार का वर्णन किया था। उस वर्णन से उस समय के आंध्र देश के विदेशी व्यापार का स्पष्ट विवरण मालूम हो जाता है। उपर्युक्त वर्णन से जान पड़ता है कि सुमात्रा से कर्पूर, सिंहल से हाथी, जाफना से मोती, भूटान से कस्तूरी और चीन से महीन कपड़े आंध्र में आते थे। ◆

सम्पादक—प्रकाशक—मुद्रक पंडिता राकेशरानी द्वारा—दयानन्द संस्थान के लिए—भाटिया प्रेस दिल्ली में छपा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन ज्ञान [साप्ताहिक]
वेद मन्दिर, १५६९ हरध्यानसिंह मार्ग
नई दिल्ली-११०००५। दूरभाष: ५६६६३९/२०१५८४

रविवार
९ मई
१९७६

रजिस्टर्ड नं०
D (C) 619

शुभ अवसरों के लिये
21 कीमती जड़ी बूटियो से निर्मित

एम डी एच
हवन सामग्री
शुद्ध और पवित्र

200 ग्राम व 400 ग्राम के पैकिंग में

आपने नज़दीकी करयाना मर्चेन्ट से खरीदें।

महाशियां दी हट्टी प्राइवेट लिमिटिड
9/44, इन्डस्ट्रियल एरिया, कीर्तिनगर, नई देहली-110015 फोन 585122, 567100
शोरूम: खारी बावली, देहली-6 फोन. 268704
चीफ स्टाकिस्ट: रूपक स्टोर्ज, अजमलखान रोड, नई देहली 5
स्टाकिस्ट: मेसर्ज किशनचन्द सूरज प्रकाश खारी बावली देहली 6

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi